उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अक्तूबर-दिसम्बर, 2016

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
ओम देवी और अन्य **बनाम** कृष्ण कुमार और एक अन्य	234
कालू राम **बनाम** पंजाब नेशनल बैंक और एक अन्य	268
गणेश सिंह **बनाम** निदेशक, वर्धमान महावीर विश्वविद्यालय अजमेर और अन्य	210
भारत संचार निगम लि. और अन्य **बनाम** विनोद लखनपाल	223
मिकॉन इंद्रप्रस्थ सहकारी आवास समिति लिमिटेड **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य	160
यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी **बनाम** सुराम दास और अन्य	250
रत्नाप्रभा दिगम्बर नेमाडे और अन्य **बनाम** किशन लक्षमण राव देशमुख	203
रमेश चन्द **बनाम** मनोहर सिंह और अन्य	255
राधेश्याम **बनाम** हरेन्द्र पाल राठी	141
सुकूर अली **बनाम** जरीना बीबी	192
सैकेट डे **बनाम** दुखी राम पाल	188

संसद् के अधिनियम

हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 7
प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 18

अक्तूबर-दिसम्बर, 2016 (संयुक्तांक)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चंद्र पांडेय

संपादक
कमला कान्त

महत्वपूर्ण निर्णय

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 166 – प्रतिकर हेतु दावा याचिका – अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया है कि आघाती यान के ड्राइवर के कब्जे में विधिमान्य ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था तो अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर देने के लिए बाध्य है ।

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी बनाम **सुराम दास और अन्य** 250

संसद् के अधिनियम

हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (7)

प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (18)

पृष्ठ संख्या 141 – 283 **(2016) 2 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – अक्तूबर-दिसम्बर, 2016 (संयुक्तांक) (पृष्ठ संख्या 141 – 283)

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी
परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान भवन

डा. मिथिलेश चंद्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री अविनाश शुक्ला, असलम खान और पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 36

वार्षिक : ₹ 135

© 2016 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14)

– धारा 25च(क) – छंटनी – मजदूरी का निर्धारण – अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में संदेय मजदूरी वास्तव में संदत्त की जा रही मासिक मजदूरी है या दैनिक मजदूरी को 30 से गुणा करके निकाली गई 30 दिन की मजदूरी है – अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन दिए जाने वाले एक मास के नोटिस के आधार पर दी जाने वाली मजदूरी, कर्मचारी की छंटनी के पूर्व दी जाने वाली मजदूरी से अधिक होती है अतएव छंटनी करते समय संदाय की जाने वाली मजदूरी के निर्धारण में 30 दिन का गुणक लागू करना चाहिए न कि 26 दिन का गुणक लागू करना चाहिए ।

गणेश सिंह बनाम **निदेशक, वर्धमान महावीर विश्वविद्यालय अजमेर और अन्य** 210

भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का 9)

– धारा 69 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 7, नियम 11(घ)] – भागीदारी फर्म के रजिस्ट्रीकृत न होने का प्रभाव – किसी भागीदार फर्म के भागीदार द्वारा अन्य भागीदारों के विरुद्ध किसी संविदा से उद्‌भूत अधिकार को परिवर्तित कराए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए वाद को पोषणीय बनाए जाने और भागीदार फर्म का रजिस्ट्रीकृत होना एक पूर्व शर्त होती है ।

सैकेट डे बनाम **दुखी राम पाल** 188

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39)

– धारा 222 – विल का प्रोबेट – प्रोबेट न्यायालय को

पृष्ठ संख्या

मात्र विल की विधिमान्यता का परीक्षण करने और उसको निर्णीत करने की सीमित अधिकारिता प्राप्त होती है – विल का औचित्य और वसीयतकर्ता का संपत्ति के बाबत विल निष्पादित करने का अधिकार, दो पृथक् विवाद्यक हैं और यदि कोई व्यक्ति वसीयतकर्ता की संपत्ति के बाबत विल निष्पादित करने के अधिकार को चुनौती देता है तो उसे सक्षम न्यायालय की शरण में जाना होगा ।

रत्नाप्रभा दिगम्बर नेमाडे और अन्य बनाम **किशन लक्षमण राव देशमुख** 203

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 166 – प्रतिकर हेतु दावा याचिका – यदि याची ने यह साबित किया है कि ट्रक ड्राइवर के उतावलेपन से और उपेक्षापूर्वक ट्रक चलाने के कारण दुर्घटना घटी तथा चिकित्सा अधिकारी की रिपोर्ट के अनुसार याची के दाहिने और बाएं पैर का अस्थिभंग हुआ था तो अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी है ।

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी बनाम **सुराम दास और अन्य** 250

– धारा 166 – प्रतिकर हेतु दावा याचिका – अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया है कि आघाती यान के ड्राइवर के कब्जे में विधिमान्य ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था तो अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर देने के लिए बाध्य है ।

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी बनाम **सुराम दास और अन्य** 250

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 226 [सपठित औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2(त) और धारा 18(1) के साथ

पृष्ठ संख्या

औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम, 1957 का नियम 58] – याचिका की संधार्यता – सेवा का विनियमितीकरण – बैंक और उसके कर्मकारों के बीच औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 और औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम, 1957 के अधीन किए गए द्विपक्षीय समझौतों, शास्त्री अधिनिर्णय और देसाई अधिनिर्णय के उपबंधों के अधीन कोई विवाद होने पर विवाद का समाधान उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल न करके बल्कि औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन निकाला जा सकता है ।

कालू राम बनाम **पंजाब नेशनल बैंक और एक अन्य** 268

– अनुच्छेद 226 [सपठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16, 28 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 47] – विक्रय संविदा जिसके विनिर्दिष्ट पालन की आरंभिक डिक्री पारित की जा चुकी है, का कतिपय परिस्थितियों में विखंडन और परिणामस्वरूप अनुतोष का वर्जन – डिक्री धारक द्वारा आरंभिक डिक्री के अनुपालन में अधिशेष विक्रय प्रतिफल का संदाय नहीं किया गया और उस रकम को न्यायालय में चार वर्ष की अवधि के पश्चात् जमा किया गया – अधिशेष विक्रय प्रतिफल को न्यायालय में जमा करने के लिए समय विस्तार की ईप्सा करते हुए कोई आवेदन भी फाइल नहीं किया गया – निष्पादन न्यायालय ने डिक्री धारक द्वारा विलंब के बाबत किसी स्पष्टीकरण के बिना चार वर्ष के अवधि के परे जमा किए गए अधिशेष विक्रय प्रतिफल को स्वीकार करने से इनकार करके विधि की दृष्टि में सही दृष्टिकोण अंगीकृत किया ।

राधेश्याम बनाम **हरेन्द्र पाल राठी** 141

– अनुच्छेद 243यथ, 245, 246 और 248, सातवीं अनुसूची की प्रथम सूची की प्रविष्टि 97 और द्वितीय सूची

पृष्ठ संख्या

की प्रविष्टि 32 [सपठित उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1961 की धारा 113(2)] – केन्द्रीय अधिनियम का राज्य अधिनियम में समावेशन – विधायी सक्षमता – अनुच्छेद 243यथ का खंड 2 का उपखंड (क) ऐसी परिस्थिति पर विचार करता है जहां कोई सहकारी समिति या उसका कोई अधिकारी या सदस्य जानबूझकर अपेक्षित सूचना प्रस्तुत नहीं करता, मात्र इस आधार पर कि संविधान का अनुच्छेद 243यथ अपेक्षित सूचना उपलब्ध कराए जाने को उपबंधित करता है, उत्तर प्रदेश विधान-मंडल को संसद् द्वारा अधिनियमित सूचना का अधिकार अधिनियम राज्य अधिनियम में समावेशित करने की विधायी सक्षमता प्राप्त नहीं होती ।

मिकॉन इंद्रप्रस्थ सहकारी आवास समिति लिमिटेड बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 160

– अनुच्छेद 243यथ, 245, 246 और 248, सातवीं अनुसूची की प्रथम सूची की प्रविष्टि 97 और द्वितीय सूची की प्रविष्टि 32 [सपठित उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1961 की धारा 113(2) और सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 2(ज)] – केन्द्रीय अधिनियम का राज्य अधिनियम में समावेशन – विधायी सक्षमता – उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम की धारा 113(2) के उपबंधों का प्रभाव सूचना का अधिकार अधिनियम की परिधि को विस्तृत करना है जिसके परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित प्रत्येक सहकारी समिति इस बात को ध्यान में रखे बिना कि कोई सहकारी समिति धारा 2(ज) के अधीन ''लोक प्राधिकारी'' की परिधि के अन्तर्गत आती है या नहीं केन्द्रीय अधिनियम द्वारा नियंत्रित होगी – यह स्पष्टतः अननुज्ञेय है और राज्य विधान-मंडल की विधायी सक्षमता के अन्तर्गत नहीं आता ।

मिकॉन इंद्रप्रस्थ सहकारी आवास समिति लिमिटेड बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 160

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 245, 246 और 248, सातवीं अनुसूची की प्रथम सूची की प्रविष्टि 97 और द्वितीय सूची की प्रविष्टि 32 [सपठित उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1961 की धारा 113(2)] – केन्द्रीय अधिनियम का राज्य अधिनियम में समावेशन – विधायी सक्षमता – उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम की धारा 113(2) की संवैधानिक विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दिया जाना कि इस उपबंध द्वारा 2005 के सूचना का अधिकार अधिनियम को राज्य अधिनियम में समावेशित कर दिया गया है – सूचना का अधिकार अधिनियम संसद् द्वारा संविधान की सावतीं अनुसूची की संघसूची की प्रविष्टि 97 के अधीन प्रदत्त अवशिष्ट शक्तियों का प्रयोग करते हुए अधिनियमिति किया गया है – जब तक कि राज्य विधान-मंडल किसी ऐसे विषय पर विधि अधिनियमित करने में सक्षम नहीं होता, उसको यह अधिकार नहीं होगा कि सूचना का अधिकार अधिनियम राज्य में स्थित समस्त सहकारी समितियों पर लागू कराए जाने के लिए उपबंधित करे, इसलिए उत्तर प्रदेश राज्य विधान-मंडल सूचना का अधिकार अधिनियम के उपबंधों को उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम की धारा 113(2) में सम्मिलित करने की विधायी सक्षमता से निरावृत्त है ।

मिकॉन इंद्रप्रस्थ सहकारी आवास समिति लिमिटेड
बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 160

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 100 [सपठित मुस्लिम स्वीय (शरियत) विधि, 1937 की धारा 149] – मौखिक दान – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह साबित नहीं होता कि कब्जे का परिदान किया गया, चूंकि मौखिक दान के प्रमुख तीन तत्वों में कब्जे का परिदान एक प्रमुख तत्व है और इस मामले

पृष्ठ संख्या

में कब्जे का परिदान नहीं किया गया, अतः मौखिक दान विधिमान्य नहीं है ।

सुकूर अली बनाम **जरीना बीबी** 192

– धारा 100 और आदेश 27 का नियम 41 [सपठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 10 और 12] – कुर्की/विल्लंगम के अध्यधीन स्थावर सम्पत्ति के लिए विक्रय करार किया जाना – संपत्ति का निर्मुक्त होना – परिसीमा अवधि के भीतर करार निष्पादित नहीं कराना – विक्रय करार से इनकार करना – यदि कुर्की/विल्लंगम के अध्यधीन स्थावर सम्पत्ति के बारे में विक्रय करार किया जाता है तो क्रेता का यह दायित्व है कि वह उस सम्पत्ति को कुर्की/विल्लंगम के दायित्व से निर्मुक्त करवाए, ऐसा नहीं करने पर वह उस विक्रय करार का विनिर्दिष्ट पालन नहीं करवा सकता है और विक्रेता को उसे अभिखण्डित कराने का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाता है जिसके लिए वह विधि के अनुसार समुचित न्यायालय में आवेदन कर सकता है ।

ओम देवी और अन्य बनाम **कृष्ण कुमार और एक अन्य** 234

– धारा 100 और आदेश 39 – प्रश्नगत भूखंड का विक्रय – विक्रय करार के अनुसरण में न तो कब्जा लेना न ही राजस्व अभिलेखों में नाम अभिलिखित कराना – विक्रय करार का संदिग्ध और अविश्वसनीय पाया जाना – स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की मांग करना – मांग नामंजूर होना – यदि प्रश्नगत भूखंड को एक विक्रय करार द्वारा क्रय किया जाता है तो उसके अनुसरण में नामांतरण और कब्जा प्राप्त करना आवश्यक होता है अन्यथा विक्रय करार संदिग्ध और अविश्वसनीय समझा जाएगा जब तक कि इसे सभी प्रकार के संदेहों से परे साबित नहीं कर दिया जाता है तब तक उसके आधार पर स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री मंजूर करने

पृष्ठ संख्या

का प्रश्न ही नहीं उद्‌भूत होता है ।

रमेश चन्द बनाम **मनोहर सिंह और अन्य** 255

– धारा 115 और 151 – पुनरीक्षण आवेदन – बकाया किराए का संदाय करने में असफल रहने के आधार पर किराएदार की बेदखली के लिए वाद – वाद डिक्री होना – ऐसे निर्णय/डिक्री में मुद्रण संबंधी/लिपिकीय त्रुटि कारित होना – इस आधार पर बेदखली से बचने के लिए ऐसे निर्णय/डिक्री के विरुद्ध पुनरीक्षण आवेदन फाइल करना – आवेदन खारिज होना – विधि का यह सुस्थिर सिद्धांत है कि यदि किसी निर्णय/डिक्री में कोई मुद्रण संबंधी/लिपिकीय त्रुटि कारित हो जाती है तो उसमें संशोधन या सुधार के लिए उसी न्यायालय के समक्ष आवेदन करना चाहिए न कि किसी उच्चतर न्यायालय के समक्ष अपील/आवेदन करना चाहिए – यदि ऐसा किया जाता है तो वह अपील/आवेदन खारिज किए जाने योग्य होगा ।

भारत संचार निगम लि. और अन्य बनाम **विनोद लखनपाल** 223

———————

राधेश्याम

बनाम

हरेन्द्र पाल राठी

तारीख 26 मई, 2015

न्यायमूर्ति (श्रीमती) सुनीता अग्रवाल

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16, 28 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 47] – विक्रय संविदा जिसके विनिर्दिष्ट पालन की आरंभिक डिक्री पारित की जा चुकी है, का कतिपय परिस्थितियों में विखंडन और परिणामस्वरूप अनुतोष का वर्जन – डिक्री धारक द्वारा आरंभिक डिक्री के अनुपालन में अधिशेष विक्रय प्रतिफल का संदाय नहीं किया गया और उस रकम को न्यायालय में चार वर्ष की अवधि के पश्चात् जमा किया गया – अधिशेष विक्रय प्रतिफल को न्यायालय में जमा करने के लिए समय विस्तार की ईप्सा करते हुए कोई आवेदन भी फाइल नहीं किया गया – निष्पादन न्यायालय ने डिक्री धारक द्वारा विलंब के बाबत किसी स्पष्टीकरण के बिना चार वर्ष के अवधि के परे जमा किए गए अधिशेष विक्रय प्रतिफल को स्वीकार करने से इनकार करके विधि की दृष्टि में सही दृष्टिकोण अंगीकृत किया ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थी ने याची द्वारा निष्पादित विक्रय संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के प्रयोजनार्थ 1991 का मूल वाद सं. 1221 फाइल किया । याची ने दलील दी कि प्रत्यर्थी ने विक्रय संविदा के निष्पादन की तारीख पर एक लाख अठारह हजार रुपए के संपूर्ण विक्रय प्रतिफल के बजाय नब्बे हजार रुपए का आंशिक संदाय किया था । प्रत्यर्थी ने दलील दी कि वह 28,000/- रुपए की अधिशेष रकम के संदाय के लिए सदैव तैयार और इच्छुक रहा है किन्तु याची ने विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया । विचारण न्यायालय ने वाद को प्रत्यर्थी के पक्ष में एकपक्षीय रूप से तारीख 24 फरवरी, 1996 को याची को यह निर्देश देते हुए डिक्री

कर दिया कि वह 28,000/- रुपए का अधिशेष विक्रय प्रतिफल प्राप्त करने के पश्चात् डिक्री की तारीख से दो माह के भीतर विक्रय विलेख निष्पादित कर दे । किन्तु याची ने 28,000/- रुपए की अधिशेष रकम का संदाय नहीं किया अतः प्रत्यर्थी द्वारा डिक्री के निष्पादन के लिए 1996 का निष्पादन मामला सं. 61 फाइल किया गया । निष्पादन मामला में याची उपस्थित नहीं हुआ । प्रत्यर्थी ने डिक्री में समाविष्ट निर्देश का पालन करते हुए तारीख 4 अप्रैल, 2000 को अधिशेष विक्रय प्रतिफल की रकम 28,000/- रुपए न्यायालय में जमा कर दी । याची ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन तारीख 9 जुलाई, 2002 को आक्षेप यह अभिकथित करते हुए फाइल किए कि डिक्री निष्पादन योग्य नहीं है चूंकि क्रेता ने डिक्री में उपबंधित समयावधि के भीतर अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा नहीं किया और उस रकम को जमा करने के लिए समय बढ़ाए जाने का भी कोई आवेदन फाइल नहीं किया और रकम चार वर्ष से अधिक व्यतीत हो जाने के पश्चात् जमा की गई । विचारण/निष्पादन न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन फाइल किए गए आक्षेप को इस आधार पर मंजूर कर लिया कि डिक्री धारक ने डिक्री में अनुध्यात समयावधि के भीतर अधिशेष विक्रय प्रतिफल की रकम जमा नहीं की इसलिए विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री का निष्पादन नहीं किया जा सकता । चूंकि यह एक सशर्त डिक्री थी और डिक्री में जिन शर्तों को विहित किया गया था उनका अनुपालन नहीं किया गया । इस आदेश से व्यथित होकर याची ने पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष निष्पादन न्यायालय के आदेश को चुनौती दी । पुनरीक्षण न्यायालय ने निष्पादन न्यायालय के आदेश को इस आधार पर अपास्त कर दिया कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन फाइल किए गए आक्षेप डिक्री के गलत निर्वचन के कारण मंजूर किए गए और निष्पादन न्यायालय निष्पादन कार्यवाही को इस आधार पर समय बाधित अभिनिर्धारित करके समाप्त नहीं कर सकता कि अधिशेष विक्रय प्रतिफल अनुध्यात समयावधि के भीतर जमा नहीं किया गया कि याची का यह उत्तरदायित्व था कि वह प्रत्यर्थी से अधिशेष विक्रय प्रतिफल की रकम 28,000/- रुपए प्राप्त करता । पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर याची ने यह रिट याचिका फाइल की । याचिका को मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – हमारे समक्ष उपस्थित मामले में डिक्री एकपक्षीय थी जो पक्षों के मध्य अंतिम हो चुकी है चूंकि इसको निर्णीत निर्णयों द्वारा चुनौती नहीं दी गई । विचारण न्यायालय ने विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने के

लिए वादी की तत्परता और इच्छा के संबंध में कोई निष्कर्ष अभिलिखित किए बिना प्रतिवादियों की अनुपस्थितियों में वाद को डिक्री कर दिया था । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल की दलील कि अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा करने के लिए डिक्री धारक को विचारण न्यायालय का कोई निदेश नहीं था और निर्णीत ऋणी का कर्तव्य था कि वह डिक्री धारक से राशि प्राप्त करता, स्वीकार नहीं की जा सकती । डिक्री धारक ने तारीख 4 अप्रैल, 2000 तक राशि जमा नहीं की थी अर्थात् डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् चार वर्ष की अधिक अवधि तक । डिक्री धारक द्वारा राशि जमा करने के लिए समय के विस्तार के प्रयोजनार्थ कोई विनिर्दिष्ट आधार प्रस्तुत नहीं किया है । किसी भी प्रक्रम पर डिक्री धारक ने राशि जमा करने में कारित विलंब को क्षमा करने के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है । यहां तक कि डिक्री धारक ने इस बाबत कोई प्रकथन नहीं किया है कि उसने निर्णीत ऋणी को अधिशेष रकम का प्रस्ताव किया था और निर्णीत ऋणी ने उसको प्राप्त करने से इनकार कर दिया था । राशि वर्ष 1996 में निष्पादन आवेदन फाइल किए जाने के समय जमा नहीं की गई थी । निष्पादन न्यायालय ने अभिलिखित किया है कि डिक्री धारक ने राशि जमा करने के लिए या अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा करने के बाबत समय के विस्तार के लिए कभी कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया । निष्पादन न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अधिशेष विक्रय प्रतिफल के संदाय का प्रस्ताव निर्णीत ऋणी को नहीं दिया गया था और न ही इसको डिक्री धारक द्वारा चार वर्ष की अवधि तक न्यायालय में जमा किया गया । पुनरीक्षण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके विधि की दृष्टि में त्रुटि कारित की है कि डिक्री धारक को अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा करने के लिए कभी कोई निर्देश नहीं दिया गया फिर भी प्रतिवादियों को अधिशेष विक्रय प्रतिफल प्राप्त करने के पश्चात् विक्रय विलेख निष्पादित करने का निदेश दिया गया था । विचारण द्वारा पारित निर्णय का यह निर्वचन, जो पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा किया गया है, करार के विनिर्दिष्ट पालन की विधि की भ्रांत धारणा पर आधारित है । जहां तक प्रतिवादियों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन फाइल किए गए आक्षेप का संबंध है, याचियों/निर्णीत ऋणियों ने डिक्री के निष्पादन का विरोध इस आधार पर किया है कि अधिशेष विक्रय प्रतिफल का संदाय डिक्री धारक को नहीं किया गया था । विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री एक आरंभिक डिक्री है । डिक्री पारित करने वाले न्यायालय की शक्तियां विनिर्दिष्ट पालन के लिए

वाद डिक्री करने के पश्चात् समाप्त नहीं होती, इसके बजाय उसके द्वारा अंतिम डिक्री पारित की जानी होती है किन्तु अंतिम डिक्री तभी पारित की जा सकती है जब आरंभिक डिक्री की शर्तों का अनुपालन कर दिया जाए । विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री में डिक्री की शर्तों के बाबत विनिर्दिष्ट समय का पालन किया जाना चाहिए । न्यायालय को राशि जमा करने में विफलता की स्थिति में डिक्री धारक के आवेदन पर समय को विस्तारित करने की शक्ति प्राप्त होती है । डिक्री धारक ने समय के विस्तार की ईप्सा करते हुए कोई आवेदन फाइल नहीं किया । इसके विपरीत सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के आक्षेप में निर्णीत ऋणी ने अभिवाक् किया कि अंतिम डिक्री पारित नहीं की जा सकी चूंकि डिक्री धारक ने आरंभिक डिक्री के अनुपालन में अधिशेष विक्रय प्रतिफल को जमा नहीं किया था । निष्पादन न्यायालय ने इन तथ्यों पर विचार करने में विधि की दृष्टि में सही दृष्टिकोण अंगीकृत किया था कि क्या विनिर्दिष्ट पालन के लिए पारित की गई डिक्री अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा किए जाने के प्रयोजनार्थ डिक्री धारक को समय का विस्तार प्रदान किए जाने के द्वारा निष्पादित की जा सकती है । उसने अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए डिक्री धारक द्वारा विलंब के बाबत किसी स्पष्टीकरण के बिना चार वर्ष की अवधि के परे की गई जमा को स्वीकार करने से इनकार कर दिया । पुनरीक्षण न्यायालय को अपनी सीमित अधिकारिता का प्रयोग करते हुए इस मामले में मध्यक्षेप नहीं करना चाहिए था । (पैरा 15, 16, 17, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2008] 2008 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 7 =
2008 (2) ए. एल. जे. (एन. ओ. सी.) 262 :
नरोत्तम बनाम **गणपत सहकारी आवास समिति लिमिटेड और अन्य** ; 10, 14

[2007] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1514 =
2007 (2) ए. डब्ल्यू. सी. 1903 (एस. सी.) :
चंदा (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **रतनी और एक अन्य** ; 9, 13, 14

[2004] (2004) 12 एस. सी. सी. 278 :
एन. मणि बनाम **संगीता थियेटर और अन्य** ; 7

[2001] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2552 =
2001 ला सूट (एस. सी.) 924 :
धुरन्धर प्रसाद सिंह बनाम **जय प्रकाश यूनिवर्सिटी** ; 11

[1997] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 918 :
वी. एस. पालानी कामी चेतियार फर्म बनाम
सी. पलग्गप्पन और एक अन्य ; 8

[1997] 1997 (15) एस. सी. डी. 836 :
जगबीर सिंह बनाम **षष्टम् अपर जिला**
न्यायाधीश, बिजनौर और अन्य । 11

आरम्भिक सिविल (रिट) अधिकारिता : 2008 की रिट याचिका सं. 57407.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री अभिताभ अग्रवाल और प्रमोद कुमार जैन

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री मनोज कुमार मिश्र, आर. आर. शुक्ला (स्थायी काउंसेल) और यू. एस. मिश्र

आदेश

याची की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता श्री प्रमोद कुमार जैन और प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री यू. एस. मिश्र को सुना ।

2. यह रिट याचिका, पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध निदेशित है जिसके द्वारा 2002 के सिविल पुनरीक्षण सं. 396 को यह अभिनिर्धारित करते हुए मंजूर किया गया कि निष्पादक न्यायालय ने प्रत्यर्थी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 सपठित धारा 151 के अधीन फाइल किए गए आवेदन सं. 3जी-ए2 को मंजूर करके और तद्नुसार निष्पादन मामले को खारिज करके अपनी अधिकारिता का उल्लंघन किया है ।

3. वर्तमान रिट याचिका जिन तथ्यों के आधार पर फाइल की गई है कि प्रत्यर्थी हरेन्द्र पाल राठी द्वारा विक्रय संविदा, जिसको अभिकथित रूप से याचियों द्वारा निष्पादित किया गया था, के विनिर्दिष्ट पालन के लिए 1991 का मूल वाद सं. 1221 फाइल किया गया था । याची की ओर से यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी ने तारीख 7 मार्च, 1991 को अर्थात् करार

के निष्पादन की तारीख पर 1,18,000/- रुपए के प्रतिफल के बजाय 90,000/- रुपए का संदाय किया था । वादी अधिशेष 28,000/- रुपए के संदाय के लिए सदैव तैयार और इच्छुक रहा है किन्तु प्रतिवादियों ने विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया । वाद एकपक्षीय रूप से डिक्री हो गया । विचारण न्यायालय ने वाद तारीख 24 फरवरी, 1996 को प्रतिवादियों को निर्देशित करते हुए डिक्री कर दिया कि वे 28,000/- रुपए के अधिशेष विक्रय प्रतिफल की प्राप्ति के पश्चात् डिक्री की तारीख से 2 माह के भीतर विक्रय विलेख निष्पादित करें । ऐसा प्रतीत होता है कि डिक्री धारक/प्रत्यर्थी (इस रिट याचिका में) द्वारा 1996 का निष्पादन मामला सं. 61 फाइल किया गया था । नोटिसें जारी की गईं थीं । निर्णीत ऋणी/याची उपस्थित नहीं हुए । निष्पादन मामला लंबित रहा और प्रत्यर्थी ने वर्ष 1996 की डिक्री के मतावलंबन में तारीख 4 अप्रैल, 2000 को विक्रय प्रतिफल की अधिशेष रकम जमा कर दी । निर्णीत ऋणी/याची ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन तारीख 9 जुलाई, 2002 को आक्षेप यह अभिकथित करते हुए फाइल किए कि डिक्री निष्पादनीय नहीं है चूंकि क्रेता ने डिक्री में उपबंधित समयावधि के भीतर अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा नहीं किया । विचारण न्यायालय के समक्ष समय बढ़ाए जाने के लिए कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया था और रकम चार वर्ष से अधिक अवधि व्यतीत हो जाने के पश्चात् जमा की गई थी । विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को इस आधार पर मंजूर कर लिया कि डिक्री धारक ने डिक्री में अनुध्यात समयावधि के भीतर अधिशेष विक्रय प्रतिफल की रकम को जमा नहीं किया । विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री का निष्पादन नहीं किया जा सकता था चूंकि यह एक सशर्त डिक्री थी और इस डिक्री में जिन शर्तों को विहित किया गया था, उनका अनुपालन नहीं किया गया । विनिर्दिष्ट अनुपालन अधिनियम की धारा 16 के अधीन वर्जन का अवलंब यह निष्कर्ष निकालते हुए लिया गया कि डिक्री धारक यह प्रकथन करने और साबित करने में विफल रहा है कि उसने संविदा में अपने भाग का निर्वहन कर दिया है और संविदा में अपने भाग का निर्वहन करने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक रहा है । वह संविदा के विनिर्दिष्ट पालन का अनुतोष प्राप्त नहीं कर सकता ।

4. अधिशेष विक्रय प्रतिफल के असंदत्त रहने की दशा में यह उपधारणा की जाएगी कि क्रेता ने संविदा के निर्वहन के अनुतोष का अधित्यजन कर दिया है । यह अभिनिर्धारित किया गया कि डिक्री निष्पादनीय थी और 1996 के निष्पादन मामला सं. 61 की कार्यवाही के

अभिलेख को अभिलेखागार भेज दिया गया ।

5. तथापि, पुनरीक्षण न्यायालय ने निष्पादन न्यायालय के आदेश को इस आधार पर अपास्त कर दिया कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन आवेदन डिक्री के गलत निर्वचन के कारण मंजूर किया गया था । निष्पादन न्यायालय इस आधार पर निष्पादन कार्यवाही को समय बाधित अभिनिर्धारित करके समाप्त नहीं कर सकता था कि अधिशेष विक्रय प्रतिफल अनुध्यात समयावधि के भीतर इस कारणवश जमा नहीं किया गया कि निर्णीत ऋणी का यह उत्तरदायित्व था कि वह डिक्री धारक/वादी से विक्रय की अधिशेष रकम अर्थात् 28,000/- रुपए प्राप्त करता । डिक्री में वादी/डिक्री धारक को ऐसा कोई विनिर्दिष्ट निर्देश नहीं दिया गया है कि वह अधिशेष विक्रय प्रतिफल को या तो न्यायालय में जमा करे या प्रतिवादियों/डिक्री धारक को उसका संदाय करे । निर्णीत ऋणियों को विनिर्दिष्ट निर्देश दिया गया था जो डिक्री का अनुपालन करने और उसके मतावलंबन में 28,000/- रुपए के अधिशेष विक्रय प्रतिफल की प्राप्ति पर विक्रय विलेख निष्पादित करने की बाध्यता के अधीन थे ।

6. पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश को चुनौती देते हुए याची के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि :–

(1) डिक्री धारक द्वारा एकपक्षीय डिक्री प्राप्त की गई थी और उसके निष्पादन के लिए निष्पादन आवेदन निर्णय की तारीख से 10 माह की अवधि व्यतीत हो जाने के पश्चात् फाइल किया गया था । इसके अतिरिक्त डिक्री धारक ने निष्पादन न्यायालय में अधिशेष विक्रय प्रतिफल यह दर्शित करने के प्रयोजनार्थ जमा नहीं किया कि वह विक्रय विलेख निष्पादित कराने के लिए तैयार और इच्छुक था ।

(2) विचारण न्यायालय ने अधिशेष विक्रय प्रतिफल के संदाय के बाबत डिक्री धारक की तैयारी और इच्छा के संबंध में डिक्री में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला है । पुनरीक्षण न्यायालय ऐसे किसी निष्कर्ष की अनुपस्थिति में डिक्री के निष्पादन के लिए निर्देशित नहीं कर सकता था ।

(3) डिक्री धारक ने निष्पादन आवेदन में ऐसा कोई प्रकथन नहीं किया है कि उसने निर्णीत ऋणी को अधिशेष विक्रय प्रतिफल के संदाय का प्रस्ताव दिया था और निर्णीत ऋणी ने उसको प्राप्त करने से मना कर दिया था ।

(4) अधिशेष विक्रय प्रतिफल निष्पादन न्यायालय के समक्ष चालान के माध्यम से तारीख 4 अप्रैल, 2004 को जमा किया गया था । तारीख 14 जुलाई, 2005 के फाइल किए गए आवेदन में यह अभिकथित किया गया है कि चूंकि डिक्री धारक ने तारीख 4 अप्रैल, 2000 को अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा कर दिया था और वह सदैव संविदा में अपनी भूमिका का निर्वाह करने के लिए तैयार और इच्छुक रहा है, डिक्री धारक के पक्ष में विक्रय विलेख के निष्पादन की डिक्री निष्पादनीय है ।

(5) सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन फाइल किए गए आक्षेप में याची/निर्णीत ऋणी ने सुस्पष्टतः अभिकथित किया है कि कोई करार अस्तित्व में नहीं था और तारीख 12 मार्च, 1997 का अभिकथित करार छल के परिणामस्वरूप है । विचारण न्यायालय द्वारा विक्रय प्रतिफल जमा कराए जाने के लिए दो माह का समय प्रदान किया गया था किन्तु डिक्री धारक ने इस शर्त का अनुपालन नहीं किया और इसलिए डिक्री का निष्पादन नहीं किया जा सका ।

(6) निर्णीत ऋणी द्वारा तारीख 27 जनवरी, 2000 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 47 सपठित धारा 151 के अधीन आक्षेप फाइल किए गए थे । डिक्री धारक ने उक्त आक्षेप की प्राप्ति के पश्चात् निष्पादन न्यायालय के समक्ष तारीख 4 अप्रैल, 2000 को अधिशेष विक्रय प्रतिफल की रकम जमा कर दी थी और निर्णीत ऋणी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन फाइल किए गए आक्षेप के विरुद्ध अपना उत्तर भी फाइल कर दिया था ।

(7) पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला गया कि निर्णीत ऋणी वर्ष 1996 में डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् विक्रय विलेख निष्पादित कराने के लिए तैयार और इच्छुक नहीं था । पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा इस बाबत विचार नहीं किया गया कि 1963 के विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 16 सपठित धारा 28 के अधीन विनिर्दिष्ट पालन के लिए फाइल किया गया वाद डिक्री नहीं किया जा सकता यदि वह पक्ष जो संविदा का पालन कराए जाने की ईप्सा कर रहा है, ने उस संविदा के अंतर्गत न तो अपने भाग का पालन किया है और न ही करने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक रहा है । धारा 28 आगे उपबंधित करती है कि यदि क्रय राशि या कोई अन्य राशि, जिसका संदाय करने के लिए न्यायालय ने

डिक्री के अधीन आदेशित किया था, क्रेता द्वारा जमा नहीं की जाती, तो विक्रेता उसी वाद में संविदा को विखंडित किए जाने के लिए आवेदन कर सकता है । यदि विक्रेता ऐसा कोई आवेदन प्रस्तुत करता है, तो न्यायालय द्वारा उस पर समुचित आदेश पारित किया जाएगा ।

(8) सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन आवेदन में उठाए गए आक्षेप कि डिक्री धारक ने न तो अधिशेष विक्रय प्रतिफल के संदाय का प्रस्ताव किया था और न ही उसको निष्पादन न्यायालय में जमा किया, से यह साबित होता है कि वह कभी भी संविदा के अपने भाग का निर्वहन करने के लिए तैयार और इच्छुक नहीं था । निर्णीत ऋणी द्वारा उठाए गए आक्षेपों को विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 28 के अधीन आक्षेप प्रतीत किया जाना चाहिए था । मात्र इस कारणवश कि याची द्वारा फाइल किया गया आवेदन/आक्षेप को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन प्रतीत कर लिया गया है, उसको पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा इस रीति में अस्वीकृत नहीं किया जा सकता था ।

(9) वास्तव में विचारण न्यायालय ने याची के आक्षेप पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार किया है और ठीक मताभिव्यक्ति की है कि डिक्री निष्पादित नहीं की जा सकती थी चूंकि डिक्री धारक ने विचारण न्यायालय द्वारा अनुज्ञप्त समय के भीतर अधिशेष विक्रय प्रतिफल न्यायालय में जमा नहीं किया था । विचारण न्यायालय द्वारा न तो समयावधि का विस्तार प्रदान किया गया और न ही इस प्रयोजनार्थ कोई आवेदन प्रस्तुत किया गया । पुनरीक्षण न्यायालय ने तारीख 24 फरवरी, 1996 के निर्णय और आदेश में दिए गए निर्देशों के निर्वचन में घोर अवैधता कारित की है और यह निष्कर्ष निकाला है कि निर्देश मात्र निर्णीत ऋणी को राशि प्राप्त करने के लिए दिया गया था और डिक्री धारक अधिशेष विक्रय प्रतिफल का प्रस्ताव करने के लिए या उसको निष्पादन न्यायालय में जमा करने के लिए बाध्यताधीन नहीं था ।

7. याची के विद्वान् काउंसेल ने **एन. मणि** बनाम **संगीता थियेटर और अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब यह निवेदन करते हुए लिया कि यदि किसी प्राधिकारी को विधि के अधीन कोई आदेश पारित करने की शक्ति प्राप्त होती है तो मात्र इस कारणवश

[1] (2004) 12 एस. सी. सी. 278.

कि इस शक्ति का प्रयोग करते हुए इसके स्रोत को विनिर्दिष्ट रूप से निर्दिष्ट नहीं किया गया है, शक्ति का प्रयोग दूषित नहीं हो जाता जब तक कि शक्ति ही विद्यमान न हो और उसको विधि में उपलब्ध किसी स्रोत में खोजा जा सकता हो । याचियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि निष्पादन न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन याचियों द्वारा फाइल किए गए आक्षेपों पर विचार करने की शक्ति उसी प्रकार से प्राप्त होती है जैसे कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 28 के अधीन फाइल किए गए आवेदन पर । निष्पादन न्यायालय को इस पर विचारण करने की शक्ति प्राप्त थी कि क्या क्रेता/डिक्री धारक ने उस क्रय राशि के संदाय का प्रस्ताव नहीं किया था जैसा कि न्यायालय द्वारा आदेशित किया गया था या नहीं । निष्पादन न्यायालय यह निष्कर्ष निकालते हुए कि क्रेता द्वारा राशि के संदाय का प्रस्ताव नहीं किया था और न ही विक्रेता द्वारा इनकार का अभिवाक् किया गया था, संविदा को अभिखंडित किए जाने और निष्पादन आवेदन को खारिज किए जाने के लिए विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 28(1) के अधीन अपनी शक्ति का सही प्रयोग किया था ।

8. **वी. एस. पालानी कामी चेतियार फर्म** बनाम **सी. पलग्गप्पन और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जब विचारण न्यायालय और निष्पादन न्यायालय समान है, तो निष्पादन न्यायालय समय विस्तारण के लिए या विक्रय की संविदा के विखंडन के लिए विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 28 के अधीन फाइल किए गए आवेदन पर विचार कर सकता है । यदि ऐसा कोई आवेदन निष्पादन न्यायालय के समक्ष फाइल किया जाता है तो उसको मुख्य वाद में फाइल किया गया आवेदन प्रतीत किया जाएगा । आगे उक्त निर्णय के पैराग्राफ 15 और 17 का अवलंब लिया गया जिनको नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

> "15. रमणकुट्टी गुप्तन **बनाम** अवारा [(1994) 2 एस. सी. सी. 642 = ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1699] वाले मामले में अपीलार्थी अचल संपत्ति के विक्रय के लिए विनिर्दिष्ट पालन करार के वाद में निर्णीत ऋणी था । न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या अपील न्यायालय द्वारा उसी वाद (जिसको विचारण न्यायालय

[1] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 918.

द्वारा खारिज कर दिया गया था) में पारित डिक्री में निष्पादन पक्ष की ओर से अधिनियम की धारा 28 के अधीन फाइल किया गया आवेदन पोषणीय था । यद्यपि विनिर्दिष्ट पालन के लिए वादी-प्रत्यर्थी का वाद विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था, किन्तु उसी वाद को अपील न्यायालय द्वारा डिक्री कर दिया गया था जिसने प्रतिफल की अधिशेष रकम जमा करने के लिए एक माह का समय प्रदान किया था । निर्णीत ऋणी ने डिक्री के विरुद्ध उच्च न्यायालय में द्वितीय अपील फाइल की जो खारिज कर दी गई । डिक्री धारक ने अपील न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के पश्चात् रकम जमा की किन्तु इसके पहले कि द्वितीय अपील खारिज की जाती, डिक्री धारक ने डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन प्रस्तुत कर दिया । निर्णीत ऋणी ने इन्हीं कार्यवाहियों में अधिनियम की धारा 28 के अधीन संविदा के विखंडन के लिए आवेदन फाइल किया जिसके परिणामस्वरूप डिक्री इस आधार पर पारित हुई कि अधिशेष प्रतिफल विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री पारित किए जाने के एक माह के भीतर जमा नहीं किया गया । निष्पादन न्यायालय ने आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया कि रकम समय के भीतर जमा की गई है और साथ ही यह अभिनिर्धारित किया कि आवेदन निष्पादन पक्ष की ओर पोषणीय नहीं था । पुनरीक्षण फाइल किए जाने पर उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि आवेदन निष्पादन न्यायालय के समक्ष पोषणीय नहीं था । इसी कारणवश निर्णीत ऋणी इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ । इस न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की कि जब डिक्री शर्तों के पालन के लिए समय विनिर्दिष्ट करती है, तो राशि जमा करने में विफल रहने पर धारा 28(1) स्वयमेव न्यायालय को उन शर्तों पर समय को विस्तारित करने की शक्ति प्रदान करती है जिनकी वह अनुज्ञा क्रय राशि या कोई अन्य राशि, जिसके बाबत न्यायालय ने उसको संदाय करने के लिए आदेशित किया है, के संदाय के प्रयोजनार्थ प्रदान करे । न्यायालय ने बाम्बे उच्च न्यायालय और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चयों के टकराव का उल्लेख करने के पश्चात् अभिनिर्धारित किया कि यदि जिस न्यायालय ने डिक्री पारित की है और जिसके द्वारा निष्पादित की जानी है, एक ही है तो अधिनियम की धारा 28 के अधीन आवेदन निष्पादन न्यायालय में फाइल किया जा सकता है । तथापि, जहां डिक्री निष्पादन के लिए किसी न्यायालय को अंतरित कर दी जाती है

तो निश्चित रूप से वह अंतरिती न्यायालय मूल न्यायालय नहीं है और अधिनियम की धारा 28 के अधीन निष्पादन न्यायालय वही न्यायालय नहीं है जिसने डिक्री पारित की थी । किन्तु जब आवेदन उस न्यायालय में फाइल किया जाता है जिसमें मूल वाद फाइल किया गया था और निष्पादन कार्यवाही आगे बढ़ रही है, तो निश्चित रूप से धारा 28 के अधीन फाइल किया गया आवेदन उसी न्यायालय में पोषणीय होगा । इसलिए निर्णीत ऋणी की इस दलील पर विचार करते हुए कि अधिशेष विक्रय प्रतिफल अपील न्यायालय द्वारा अनुज्ञा प्राप्त समय के भीतर जमा नहीं किया गया था, न्यायालय ने कहा –

> 'अतः प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या यह मामला उचित मामला है जिसमें हमारे द्वारा मध्यक्षेप अपेक्षित है । यह देखा गया है कि विनिर्दिष्ट पालन के लिए पारित की गई डिक्री अंतिमता को प्राप्त हो जाती है । जबकि द्वितीय अपील लंबित थी, अधिशेष प्रतिफल जमा कर दिया गया था और उच्च न्यायालय के ज्ञान में इस बात को लाए जाने का कोई प्रयास नहीं किया गया कि प्रत्यर्थी ने अपील न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के अनुपालन में अधिशेष प्रतिफल की रकम समय के भीतर जमा कराने में चूक कारित की थी । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी लंबे समय से भूमि के कब्जे में रहा है । निष्पादन अभी अधूरा है । इन परिस्थितियों में, संविधान के अनुच्छेद 136 का आदेश यह है कि परिदृश्य को स्पष्ट किया जाए और आवेदन को लंबित रहने दिया जाए और अपील को खारिज कर दिया जाए ।'

17. विक्रय करार 16 फरवरी, 1980 को लगभग 19 वर्ष पहले हुआ था । इस बाबत कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया है कि प्रतिफल के अधिशेष रकम को न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए समय के भीतर क्यों नहीं जमा किया गया और धारा 28 के अधीन इस अवधि के समय के विस्तार की ईप्सा करते हुए कोई आवेदन प्रस्तुत क्यों नहीं किया गया । परसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 के अधीन करार की तारीख से या जब वाद का कारण उत्पन्न होता है, विक्रय की संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए कोई वाद फाइल करने के लिए तीन वर्ष की अवधि विहित की गई है । मात्र इस कारणवश कि वाद परिसीमा की विहित अवधि के भीतर फाइल किया गया है, क्रेता-वादी को यह दर्शित करने से मुक्त नहीं कर देगा कि क्या वह करार

के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और इच्छुक था और यदि अननुपालन किया गया तो क्या वह अननुपालन विक्रेता या किसी अन्य कारणवश उत्पन्न किए गए किसी अवरोध के कारणवश था । किसी करार के विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री प्रदान किए जाने के लिए उपबंध अत्यधिक कड़े हैं । साम्यापूर्ण विचारणाएं ही उपयोग में आती हैं । न्यायालय को समस्त संलग्न परिस्थितियों में, इस बात को सम्मिलित करते हुए कि क्या विक्रेता ने स्वयं विक्रय की संविदा के अंतर्गत युक्तियुक्त तरीके से आचरण किया है, पर विचार करना होता है । क्या विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद फाइल किए जाने के लिए विधि की यह स्थिति होने के कारण न्यायालय सामान्य अनुक्रम में विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री पारित किए जाने के पांच वर्ष के उपरांत और अपील न्यायालय द्वारा डिक्री की पुष्टि किए जाने के तीन वर्ष के उपरांत डिक्री के निबंधनों के अनुसार प्रतिफल की अधिशेष रकम का संदाय किए जाने के लिए समय को विस्तारित किए जाने की अनुज्ञा प्रदान कर सकता है ? प्रत्यर्थी-डिक्री धारक का यह पक्षकथन नहीं है कि विक्रेता-निर्णीत ऋणी की किसी चूक के कारण डिक्री के अनुसार रकम जमा नहीं कराई जा सकी थी । यदि अब यह स्थिति होने के कारण समय प्रदान किया जाता है, तो करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद फाइल किए जाने के लिए विहित परिसीमा अवधि के परे जाने के समान होगा । यद्यपि यह उपबंध कड़ाईपूर्वक लागू नहीं किया जा सकता । किसी भी दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण स्थिति है जिस पर न्यायालय द्वारा विचार किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त डिक्री धारक-प्रत्यर्थियों की ओर से किसी भी प्रकार का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि उन्होंने डिक्री के अनुसार प्रतिफल की अधिशेष रकम का संदाय क्यों नहीं किया सिवाय इसके कि उच्च न्यायालय ने जो टिप्पणी करना उचित समझा और जिसको निश्चित रूप से अभिलेख से पृथक् नहीं किया गया है । साम्या की मांग है कि विवेकाधिकार का प्रयोग डिक्री धारक-प्रत्यर्थियों के पक्ष में न किया जाए और उनको डिक्री का अनुपालन करने के लिए समय का विस्तार प्रदान न किया जाए ।"

9. **चंदा (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** बनाम **रतनी और एक अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लेते

[1] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1514 = 2007 (2) ए. डब्ल्यू. सी. 1903 (एस. सी.).

हुए यह निवेदन किया गया कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 28 के अधीन प्रदत्त शक्ति वैवेकिक है । यदि विचारण न्यायालय द्वारा अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा करने के लिए कोई विनिर्दिष्ट समयावधि उपबंधित नहीं की गई है, तो डिक्री धारक के लिए यह आवश्यक था कि वह अधिशेष रकम जमा करने के लिए प्रस्ताव देता या उसे जमा कर देता अन्यथा विचारण न्यायालय मूल संविदा को विखंडित कर सकता है ।

10. उन्होंने पुनः **नरोत्तम** बनाम **गणपत सहकारी आवास समिति लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया कि डिक्री धारक द्वारा इस प्रकथन की अनुपस्थिति में कि उसने राशि के संदाय का प्रस्ताव दिया था और निर्णीत ऋणी ने उसको प्राप्त करने से इनकार कर दिया था, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि डिक्री धारक ने संविदा के अन्तर्गत अपने दायित्व का निर्वहन कर दिया है । संविदा विखंडित किए जाने योग्य थी ।

11. उपरोक्त निवेदनों का विरोध करते हुए प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री यू. एस. मिश्र ने दलील दी कि निष्पादन न्यायालय डिक्री के परे नहीं जा सकता । उसको ऐसे विवादित प्रश्नों को विनिर्धारित करने की शक्ति प्राप्त नहीं है जो निष्पादन किए जाने योग्य डिक्री के आधार हैं । इस न्यायालय द्वारा **जगबीर सिंह** बनाम **षष्टम् अपर जिला न्यायाधीश, बिजनौर और अन्य**[2] और **धुरन्धर प्रसाद सिंह** बनाम **जय प्रकाश यूनिवर्सिटी**[3] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया गया । उन्होंने आगे निवेदन किया कि न्यायालय ने सिविल न्यायालय द्वारा पारित डिक्री का निर्वचन दोषपूर्ण ढंग से किया है । निर्णीत ऋणी को अधिशेष विक्रय प्रतिफल प्राप्त करने और विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए विनिर्दिष्ट निर्देश दिया गया था और निर्णीत ऋणी डिक्री धारक से न्यायालय के निर्देश के अनुसार विक्रय राशि का संदाय करने के लिए नहीं कहा गया था । डिक्री धारक डिक्री के अनुसार 28 हजार रुपए के अधिशेष विक्रय प्रतिफल का संदाय करने का प्रस्ताव करने की बाध्यता के अधीन नहीं था । इसके अतिरिक्त निष्पादन मामले में वह राशि जमा कर दी गई है और इसलिए विचारण न्यायालय डिक्री को निष्पादित करने की बाध्यता

---

[1] 2008 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 7 = 2008 (2) ए. एल. जे. (एन. ओ. सी.) 262.

[2] 1997 (15) एस. सी. डी. 836.

[3] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2552 = 2001 ला सूट (एस. सी.) 924.

के अधीन था ।

12. पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया । पक्षों द्वारा न्यायालय में निष्पादन आवेदन फाइल किए जाने और डिक्री धारक द्वारा अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा किए जाने की तारीखों के बाबत कोई विवाद नहीं है । इस विवाद पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ यह उपयुक्त होगा कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम के सुसंगत उपबंधों का परिशीलन किया जाए । विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 16 और 28 निम्नलिखित है :–

"16. **अनुतोष का वैयक्तिक वर्जन** – संविदा का विनिर्दिष्ट पालन किसी ऐसे व्यक्ति के पक्ष में नहीं कराया जा सकता –

(क) जो उसके भंग के लिए प्रतिकर वसूल करने का हकदार न हो ; अथवा

(ख) जो संविदा के किसी मर्मभूत निबंधन का, जिसका उसकी ओर से पालन किया जाना शेष हो, पालन करने में असमर्थ हो गया हो, या उसका अतिक्रमण करे, या संविदा के प्रति कपट करे अथवा जानबूझकर ऐसा कार्य करे जो संविदा द्वारा स्थापित किए जाने के लिए आशयित संबंध का विसंवादी या ध्वंसक हो ; अथवा

(ग) जो यह प्रकथन करने और साबित करने में असफल रहे कि उसके संविदा के उन निबंधनों से भिन्न जिनका पालन प्रतिवादी द्वारा निवारित अथवा अधित्यक्त किया गया है, ऐसे मर्मभूत निबंधनों का जो उसके द्वारा पालन किए जाने हैं, उसने पालन कर दिया है अथवा पालन करने के लिए यह सदा तैयार और रजामंद रहा है ।

स्पष्टीकरण – खंड (ग) के प्रयोजनों के लिए –

(i) जहां कि संविदा में धन का संदाय अन्तर्वलित हो, वादी के लिए आवश्यक नहीं है कि वह प्रतिवादी को किसी धन का वास्तव में निविदान करे या न्यायालय में निक्षेप करे सिवाय जबकि न्यायालय ने ऐसा करने का निदेश दिया हो ;

(ii) वादी को यह प्रकथन करना होगा कि वह संविदा का उसके शुद्ध अर्थान्वयन के अनुसार पालन कर चुका, अथवा पालन करने को तैयार और रजामन्द है ।

28. स्थावर संपत्ति के विक्रय या पट्टे पर दिए जाने के लिए ऐसी संविदाओं का, जिनके विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री की जा चुकी हो, कतिपय परिस्थितियों में विखंडन – (1) जहां कि किसी वाद में स्थावर संपत्ति के विक्रय या पट्टे पर दिए जाने की संविदा के विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री की जा चुकी हो और क्रेता या पट्टेदार डिक्री द्वारा अनुज्ञात कालावधि के भीतर या ऐसी अतिरिक्त कालावधि के भीतर, जो न्यायालय अनुज्ञात करे, विक्रय धन या अन्य राशि, जिसे देने के लिए न्यायालय ने उसे आदेश दिया हो, न दे, वहां विक्रेता या पट्टाकर्ता उसी वाद में, जिसमें डिक्री की गई है, संविदा के विखंडित किए जाने का आवेदन कर सकेगा और ऐसे आवेदन पर न्यायालय आदेश द्वारा संविदा को, या तो वहां तक जहां तक कि व्यतिक्रम करने वाले पक्षकार का संबंध है, या सम्पूर्णतः, जैसा भी मामले में न्याय द्वारा अपेक्षित हो, विखंडित कर सकेगा ।

(2) जहां कि उपधारा (1) के अधीन संविदा विखंडित कर दी गई हो, वहां न्यायालय –

(क) यदि क्रेता या पट्टेदार ने संविदा के अधीन संपत्ति का कब्जा अभिप्राप्त कर लिया हो, तो न्यायालय उसे निदेश देगा कि वह विक्रेता या पट्टाकर्ता को कब्जा प्रत्यावर्तित कर दे ; तथा

(ख) ऐसे सब भाटकों और लाभों का संदाय जो संपत्ति के संबंध में उस तारीख से जिसको क्रेता या पट्टेदार द्वारा ऐसा कब्जा अभिप्राप्त किया गया था, विक्रेता या पट्टाकर्ता को कब्जे के प्रत्यावर्तन एक प्रोद्भूत हुए हों, विक्रेता या पट्टाकर्ता को किए जाने के लिए और यदि मामले में न्यायालय द्वारा ऐसा अपेक्षित हो, तो संविदा के संबंध में अग्रिम धन या निक्षेप के तौर पर क्रेता या पट्टेदार द्वारा दी गई किसी राशि के प्रतिदाय के लिए निदेश दे सकेगा ।

(3) यदि क्रेता या पट्टेदार ऐसा क्रय धन या अन्य राशि, जिसको उसे डिक्री द्वारा उपधारा (1) में निर्दिष्ट कालावधि के भीतर देने का आदेश दिया गया हो, दे दें तो न्यायालय उसी वाद में किए गए आवेदन पर क्रेता या पट्टेदार को ऐसा अतिरिक्त अनुतोष दिला सकेगा जिसका वह हकदार हो और जिसके अन्तर्गत समुचित मामलों में निम्नलिखित में से सब या कोई अनुतोष भी आता है, अर्थात् :–

(क) विक्रेता या पट्टाकर्ता द्वारा उचित हस्तान्तर पत्र या पट्टे का निष्पादन ;

(ख) ऐसे हस्तान्तर पत्र या पट्टे के निष्पादन पर संपत्ति के कब्जे का या विभाजन और पृथक् वाद जो, यथास्थिति, विक्रेता, क्रेता या पट्टाकर्ता या पट्टेदार की प्रेरणा पर लाया गया हो, ग्राह्य नहीं होगा ।

(5) इस धारा के अधीन की किसी भी कार्यवाही के खर्च न्यायालय के विवेकाधिकार में होंगे ।

13. **चंदा** (उपरोक्त) वाले मामले में डिक्री धारक को विचारण न्यायालय द्वारा किसी विशिष्ट समयावधि के भीतर विक्रय प्रतिफल का संदाय करने के लिए कोई विनिर्दिष्ट निर्देश नहीं दिया गया था, किन्तु छह वर्ष की लंबी अवधि तक रकम न जमा करने का डिक्री धारक का आचरण पूर्णतः असद्भावी अभिनिर्धारित किया गया था । वादी की दलील कि अनुध्यात अवधि के भीतर अधिशेष प्रतिफल जमा करने के लिए वादी को कोई विनिर्दिष्ट निर्देश नहीं दिया गया था, न्याय संगत नहीं है । विचारण न्यायालय का निर्देश यह था कि विक्रय विलेख का निष्पादन डिक्री की तारीख से अधिशेष विक्रय प्रतिफल के संदाय पर दो माह के भीतर कर दिया जाए । यह अभिनिर्धारित किया गया कि अधिशेष विक्रय प्रतिफल का संदाय विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए पुरोभाव्य शर्त थी । निर्देश में यह विवक्षित था कि डिक्री धारक सर्वप्रथम अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा करेगा और तत्पश्चात् निर्णीत ऋणियों से विक्रय विलेख का निष्पादन किया जाना अपेक्षित था । चूंकि डिक्री धारक ने अधिशेष रकम जमा नहीं की, विचारण न्यायालय का मूल संविदा को विखंडित करने का आदेश निश्चित रूप से सही था ।

14. **नरोत्तम** (उपरोक्त) वाले मामले में **चंदा** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लेते हुए इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि डिक्री धारक द्वारा ऐसे मामले में न्यायालय में राशि जमा किया जाना अपेक्षित था जहां निर्णीत ऋणी डिक्री में प्रदान किए गए समय के भीतर विक्रय विलेख निष्पादित नहीं करते । डिक्री धारक द्वारा कोई शपथपत्र फाइल न किए जाने के कारण निर्णीत ऋणी ने अधिशेष रकम को स्वीकार करने और विक्रय विलेख को निष्पादित करने से इनकार कर दिया था, इसलिए निष्पादन आवेदन स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

15. हमारे समक्ष उपस्थित मामले में डिक्री एकपक्षीय थी जो पक्षों के

मध्य अंतिम हो चुकी है चूंकि इसको निर्णीत निर्णयों द्वारा चुनौती नहीं दी गई । विचारण न्यायालय ने विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने के लिए वादी की तत्परता और इच्छा के संबंध में कोई निष्कर्ष अभिलिखित किए बिना प्रतिवादियों की अनुपस्थितियों में वाद को डिक्री कर दिया था ।

16. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल की दलील कि अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा करने के लिए डिक्री धारक को विचारण न्यायालय का कोई निदेश नहीं था और निर्णीत ऋणी का कर्तव्य था कि वह डिक्री धारक से राशि प्राप्त करता, स्वीकार नहीं की जा सकती । डिक्री धारक ने तारीख 4 अप्रैल, 2000 तक राशि जमा नहीं की थी अर्थात् डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् चार वर्ष की अधिक अवधि तक । डिक्री धारक द्वारा राशि जमा करने के लिए समय के विस्तार के प्रयोजनार्थ कोई विनिर्दिष्ट आधार प्रस्तुत नहीं किया है । किसी भी प्रक्रम पर डिक्री धारक ने राशि जमा करने में कारित विलंब को क्षमा करने के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है । यहां तक कि डिक्री धारक ने इस बाबत कोई प्रकथन नहीं किया है कि उसने निर्णीत ऋणी को अधिशेष रकम का प्रस्ताव किया था और निर्णीत ऋणी ने उसको प्राप्त करने से इनकार कर दिया था । राशि वर्ष 1996 में निष्पादन आवेदन फाइल किए जाने के समय जमा नहीं की गई थी । निष्पादन न्यायालय ने अभिलिखित किया है कि डिक्री धारक ने राशि जमा करने के लिए या अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा करने के बाबत समय के विस्तार के लिए कभी कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया । निष्पादन न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अधिशेष विक्रय प्रतिफल के संदाय का प्रस्ताव निर्णीत ऋणी को नहीं दिया गया था और न ही इसको डिक्री धारक द्वारा चार वर्ष की अवधि तक न्यायालय में जमा किया गया ।

17. पुनरीक्षण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके विधि की दृष्टि में त्रुटि कारित की है कि डिक्री धारक को अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा करने के लिए कभी कोई निर्देश नहीं दिया गया फिर भी प्रतिवादियों को अधिशेष विक्रय प्रतिफल प्राप्त करने के पश्चात् विक्रय विलेख निष्पादित करने का निदेश दिया गया था । विचारण द्वारा पारित निर्णय का यह निर्वचन, जो पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा किया गया है, करार के विनिर्दिष्ट पालन की विधि की भ्रांत धारणा पर आधारित है ।

18. जहां तक प्रतिवादियों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन फाइल किए गए आक्षेप का संबंध है, याचियों/निर्णीत ऋणियों ने डिक्री के निष्पादन का विरोध इस आधार पर किया है कि अधिशेष विक्रय

प्रतिफल का संदाय डिक्री धारक को नहीं किया गया था । विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री एक आरंभिक डिक्री है । डिक्री पारित करने वाले न्यायालय की शक्तियां विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद डिक्री करने के पश्चात् समाप्त नहीं होती, इसके बजाय उसके द्वारा अंतिम डिक्री पारित की जानी होती है किन्तु अंतिम डिक्री तभी पारित की जा सकती है जब आरंभिक डिक्री की शर्तों का अनुपालन कर दिया जाए । विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री में डिक्री की शर्तों के बाबत विनिर्दिष्ट समय का पालन किया जाना चाहिए । न्यायालय को राशि जमा करने में विफलता की स्थिति में डिक्री धारक के आवेदन पर समय को विस्तारित करने की शक्ति प्राप्त होती है ।

19. डिक्री धारक ने समय के विस्तार की ईप्सा करते हुए कोई आवेदन फाइल नहीं किया । इसके विपरीत सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के आक्षेप में निर्णीत ऋणी ने अभिवाक् किया कि अंतिम डिक्री पारित नहीं की जा सकी चूंकि डिक्री धारक ने आरंभिक डिक्री के अनुपालन में अधिशेष विक्रय प्रतिफल को जमा नहीं किया था । निष्पादन न्यायालय ने इन तथ्यों पर विचार करने में विधि की दृष्टि में सही दृष्टिकोण अंगीकृत किया था कि क्या विनिर्दिष्ट पालन के लिए पारित की गई डिक्री अधिशेष विक्रय प्रतिफल जमा किए जाने के प्रयोजनार्थ डिक्री धारक को समय का विस्तार प्रदान किए जाने के द्वारा निष्पादित की जा सकती है । उसने अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए डिक्री धारक द्वारा विलंब के बाबत किसी स्पष्टीकरण के बिना चार वर्ष की अवधि के परे की गई जमा राशि को स्वीकार करने से इनकार कर दिया । पुनरीक्षण न्यायालय को अपनी सीमित अधिकारिता का प्रयोग करते हुए इस मामले में मध्यक्षेप नहीं करना चाहिए था ।

20. इसलिए इस न्यायालय का विचार है कि तारीख 24 फरवरी, 1996 और 30 सितम्बर, 2008 के आक्षेपित निर्णय और आदेश मान्य नहीं ठहराए जा सकते और तद्नुसार अपास्त किए जाते हैं । 1996 के निष्पादन मामला सं. 61 में तारीख 9 मई, 2002 को पारित निष्पादन न्यायालय का आदेश मान्य ठहराया जाता है । रिट याचिका स्वीकार की जाती है । निष्पादन आवेदन अभिलेखागार को भेजा जाता है ।

याचिका मंजूर की गई ।

शु.

मिकॉन इंद्रप्रस्थ सहकारी आवास समिति लिमिटेड

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

तारीख 19 अगस्त, 2015

मुख्य न्यायमूर्ति डा. धनंजय यशवंत चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति नारायण शुक्ला

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 245, 246 और 248, सातवीं अनुसूची की प्रथम सूची की प्रविष्टि 97 और द्वितीय सूची की प्रविष्टि 32 [सपठित उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1961 की धारा 113(2)] – केन्द्रीय अधिनियम का राज्य अधिनियम में समावेशन – विधायी सक्षमता – उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम की धारा 113(2) की संवैधानिक विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दिया जाना कि इस उपबंध द्वारा 2005 के सूचना का अधिकार अधिनियम को राज्य अधिनियम में समावेशित कर दिया गया है – सूचना का अधिकार अधिनियम संसद् द्वारा संविधान की सावतीं अनुसूची की संघसूची की प्रविष्टि 97 के अधीन प्रदत्त अवशिष्ट शक्तियों का प्रयोग करते हुए अधिनियमिति किया गया है – जब तक कि राज्य विधान-मंडल किसी ऐसे विषय पर विधि अधिनियमित करने में सक्षम नहीं होता, उसको यह अधिकार नहीं होगा कि सूचना का अधिकार अधिनियम राज्य में स्थित समस्त सहकारी समितियों पर लागू कराए जाने के लिए उपबंधित करे, इसलिए उत्तर प्रदेश राज्य विधान-मंडल सूचना का अधिकार अधिनियम के उपबंधों को उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम की धारा 113(2) में सम्मिलित करने की विधायी सक्षमता से निरावृत्त है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 243यथ, 245, 246 और 248, सातवीं अनुसूची की प्रथम सूची की प्रविष्टि 97 और द्वितीय सूची की प्रविष्टि 32 [सपठित उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1961 की धारा 113(2)] – केन्द्रीय अधिनियम का राज्य अधिनियम में समावेशन – विधायी सक्षमता – अनुच्छेद 243यथ का खंड 2 का उपखंड (क) ऐसी परिस्थिति पर विचार करता है जहां कोई सहकारी समिति या उसका कोई अधिकारी या सदस्य जानबूझकर अपेक्षित सूचना प्रस्तुत नहीं करता, मात्र इस आधार पर कि संविधान का अनुच्छेद 243यथ अपेक्षित सूचना उपलब्ध कराए

जाने को उपबंधित करता है, उत्तर प्रदेश विधान-मंडल को संसद् द्वारा अधिनियमित सूचना का अधिकार अधिनियम राज्य अधिनियम में समावेशित करने की विधायी सक्षमता प्राप्त नहीं होती ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 243यथ, 245, 246 और 248, सातवीं अनुसूची की प्रथम सूची की प्रविष्टि 97 और द्वितीय सूची की प्रविष्टि 32 [सपठित उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1961 की धारा 113(2) और सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 2(ज)] – केन्द्रीय अधिनियम का राज्य अधिनियम में समावेशन – विधायी सक्षमता – उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम की धारा 113(2) के उपबंधों का प्रभाव सूचना का अधिकार अधिनियम की परिधि को विस्तृत करना है जिसके परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित प्रत्येक सहकारी समिति इस बात को ध्यान में रखे बिना कि कोई सहकारी समिति धारा 2(ज) के अधीन "लोक प्राधिकारी" की परिधि के अन्तर्गत आती है या नहीं केन्द्रीय अधिनियम द्वारा नियंत्रित होगी – यह स्पष्टतः अननुज्ञेय है और राज्य विधान-मंडल की विधायी सक्षमता के अन्तर्गत नहीं आता ।

उत्तर प्रदेश राज्य विधान-मंडल ने 2013 के उत्तर प्रदेश सहकारी समिति संशोधन अधिनियम अधिनियमित किया जो तारीख 15 फरवरी, 2013 को प्रभावी हुआ । इस संशोधन के अधिनियम की धारा 6 द्वारा मूल अधिनियम अर्थात् उत्तर प्रदेश सहकारी अधिनियम, 1961 की धारा 113(2) में यह उपबंध जोड़ा गया कि प्रत्येक सहकारी समिति 2005 के सूचना का अधिकार अधिनियम द्वारा आच्छादित होगी । संशोधन प्रभावी किए जाने के पश्चात् गौतमबुद्ध नगर के सहायक आयुक्त और सहायक रजिस्ट्रार (सहकारिता) द्वारा तारीख 20 नवम्बर, 2013 का एक कार्यालय ज्ञापन यह अनुध्यात करते हुए जारी किया गया कि उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित समस्त सहकारी समितियां यथासंशोधित धारा 113(2) के उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए सूचना का अधिकार अधिनियम द्वारा शासित होंगी । साथ ही एक निदेश जारी किया गया कि राज्य में स्थित सभी सहकारी समितियों के सचिवों को लोक सूचना अधिकारी के रूप में पदनामित किया जाएगा । प्रथम अपीली प्राधिकारियों को भी इसी कार्यालय ज्ञापन के उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए पदनामित कर दिया गया । याचियों ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन फाइल की गई प्रस्तुत याचिका द्वारा धारा 113(2) की संवैधानिक विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी कि यह उपबंध अधिकारातीत है । साथ ही गौतमबुद्ध नगर के सहायक रजिस्ट्रार

(सहकारिता) द्वारा जारी तारीख 20 नवम्बर, 2013 के कार्यालय ज्ञापन की वैधता को भी चुनौती दी गई । रिट याचिका का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – अनुच्छेद 243यथ के खंड (2) का उपखंड (क) ऐसी परिस्थिति पर विचार करता है जहां कोई सहकारी समिति या उसका कोई अधिकारी या सदस्य जानबूझकर कोई असत्य विवरणी तैयार करता है या असत्य सूचना प्रस्तुत करता है या राज्य अधिनियम के उपबंधों के अन्तर्गत प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा उससे अपेक्षित सूचना जानबूझकर प्रस्तुत नहीं करता है । यह विवाद्यक से किसी भी प्रकार से सुसंगत नहीं है जिसको अभिनिर्धारित किया जाना है, चाहे विधान-मंडल को धारा 113(2) अधिनियमित करने के द्वारा किसी ऐसे क्षेत्र में, जो संसद् के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत है, विधान निर्मित करने और केन्द्रीय अधिनियम के लागू होने को राज्य में स्थित समस्त सहकारी समितियों पर विस्तारित करने के लिए इसका अधिकार है या नहीं । निस्संदेह रूप से सहकारी समितियों का विषय सातवीं अनुसूची की राज्य सूची की प्रविष्टि 32 के अन्तर्गत आता है । तथापि, इसमें सूचना का अधिकार सम्मिलित नहीं है । जैसाकि निष्कर्ष हमने पहले भी निकला है यह विषय सातवीं विषय सूची की संघ सूची की अवशिष्ट प्रविष्टि 97वें से संबंधित है । इन कारणोंवश हम यह भी अभिनिर्धारित करते हैं कि गौतमबुद्ध नगर के सहायक रजिस्ट्रार (सहकारिता) ने जिले की समस्त सहकारी समितियों से यह अपेक्षा करने के द्वारा कि वे अपने सचिवों को लोक सूचना अधिकारी के रूप में पदनामित करें, अपनी अधिकारिता की सीमाओं का अतिक्रमण किया है । किसी भी दशा में लोक प्राधिकारी के मामले में भी ऐसी कोई भी नियुक्ति संबद्ध प्राधिकारी द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 5 के अधीन की जानी होती है और सहायक रजिस्ट्रार को यह अधिकार नहीं था कि वह ऐसी कोई नियुक्ति करता या उसकी नियुक्ति के लिए निर्देशित करता । परिणामस्वरूप हम यह अभिनिर्धारित करते हुए इस रिट याचिका को मंजूर करते हैं कि 1965 के उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम की धारा 113(2) के उपबंध अधिकारातीत हैं और राज्य विधान-मंडल को इस कानून को अधिनियमित करने की विधायी सक्षमता प्राप्त नहीं थी । हम गौतमबुद्ध नगर के सहायक आयुक्त और सहायक रजिस्ट्रार (सहकारिता) द्वारा जारी किए गए तारीख 20 नवम्बर, 2013 के कार्यालय ज्ञापन को भी अभिखंडित करते हैं । तथापि, हम अभिव्यक्त रूप से स्पष्ट करते हैं कि यह विवाद्यक कि क्या प्रथम याची 2005 के सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत "लोक प्राधिकारी" है, राज्य सूचना आयुक्त द्वारा उन

आक्षेपों को ध्यान में रखते हुए निर्णीत किया जाएगा, जिनको याचियों द्वारा चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित कार्यवाहियों की पोषणीयता के संबंध में उठाया गया है । इसी प्रकार से वह प्रकटीकरण जिसकी ईप्सा चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा सहकारी सोसाइटियों के रजिस्ट्रार से की गई है, ऐसा मामला है जिसका विनिर्धारण राज्य सूचना आयोग द्वारा किया जाएगा । उस विवाद्यक के साथ यह प्रश्न कि क्या सूचना, जिसके प्रकटीकरण की ईप्सा की गई, का कोई भाग सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 8 के अधीन अपवादों के अन्तर्गत आता है, को राज्य सूचना आयोग द्वारा संबोधित और निर्णीत किए जाने के लिए छोड़ा जाता है । (पैरा 27, 28, 29 और 30)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2013] (2013) 16 एस. सी. सी. =
ए. आई. आर. 2013 एस. सी. (सप्ली.) 437 :
थलप्पलम सर्विस कोआपरेटिव बैंक बनाम
केरल राज्य ; 10, 11, 15, 16

[2013] (2013) 1 एस. सी. सी. 745 :
भारत संघ बनाम **नामित शर्मा** ; 19

[2012] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. (सप्ली.) 867 :
नमित शर्मा बनाम **भारत संघ** ; 19

[1997] (1997) 7 एस. सी. सी. 339 =
ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 2847 :
नई दिल्ली नगर पालिका परिषद् बनाम **पंजाब राज्य** ; 23

[1975] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1389 =
[1975] एस. सी. आर. 151 :
कृष्ण चंद गंगोपाध्याय बनाम **भारत संघ** ; 24

[1958] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 682 :
मिट्ठन लाल बनाम **दिल्ली राज्य** । 23

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2015 की याचिका सं. 6250.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री राकेश श्रीवास्तव

प्रत्यर्थी की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति डा. डी. वाई. चंद्रचूड़ ने दिया ।

मु. न्या. चंद्रचूड़ –

विवाद्यक :

संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन यह कार्रवाई 1961 के उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम की धारा 113(2), जिसको 2013 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 13 के माध्यम से संशोधन द्वारा पुरःस्थापित किया गया है, के उपबंधों की संवैधानिक विधिमान्यता को चुनौती देते हुए फाइल की गई है । इस राज्य विधान द्वारा एक उपबंध अधिनियमित किया गया है जो अनुध्यात करता है कि संसद् द्वारा अधिनियमित 2005 के सूचना का अधिकार अधिनियम में राज्य की समस्त सहकारी सोसाइटियां सम्मिलित होंगी ।

तथ्य :

2. वह पृष्ठभूमि जिसमें इस न्यायालय के समक्ष संवैधानिक चुनाती दी गई है, यह है कि प्रथम याची प्राथमिक सहकारी आवासीय समिति है जो अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत रजिस्ट्रीकृत है । द्वितीय याची प्रथम याची का अवैतनिक सचिव है । याचियों का पक्षकथन यह है कि सहकारी समिति अपना कारबार राज्य से किसी भी प्रकार की वित्तीय सुविधा या सहायता प्राप्त किए बिना अपने स्वयं के संसाधनों द्वारा चलाती है और राज्य का उसकी पूंजी में किसी भी प्रकार का कोई योगदान नहीं है ।

3. चतुर्थ प्रत्यर्थी राजेन्द्र सिंह वर्मा सहकारी समिति का सदस्य है । सहकारी समिति में अधिशेष देयों के संदाय के लिए चतुर्थ प्रत्यर्थी को एक माह का नोटिस जारी किया था । इस मांग के नोटिस को चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा एक माध्यस्थम् मामला फाइल किए जाने के द्वारा चुनौती दी गई । तारीख 16 मार्च, 2012 के पंचाट द्वारा माध्यस्थम् मामला खारिज कर दिया गया । चतुर्थ प्रत्यर्थी ने सहकारी अधिकरण के समक्ष अपील फाइल की । अपील आंशिक रूप से मंजूर कर ली गई और चतुर्थ प्रत्यर्थी को सहकारी समिति के अधिशेष देयों के संदाय का दायी अभिनिर्धारित किया गया जिनकी संख्या ब्याज सहित की जानी थी । चतुर्थ प्रत्यर्थी ने सहकारी अधिकरण के अपीली निर्णय को चुनौती देते हुए इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका फाइल की है जो लंबित है । चतुर्थ प्रत्यर्थी ने सहकारी समिति या समितियों के रजिस्ट्रार द्वारा, जैसा भी मामला हो सूचना के प्रकटीकरण के लिए 2005 के सूचना का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत

आवेदन फाइल किए । अंततः चतुर्थ प्रत्यर्थी ने राज्य सूचना आयोग के समक्ष अनेक परिवाद फाइल किए जिनके विरुद्ध सहकारी समिति ने यह अभिवाक् करते हुए आक्षेप फाइल किए कि परिवाद पोषणीय नहीं है । तारीख 1 अगस्त, 2014 को चतुर्थ प्रत्यर्थी ने सूचना का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत गौतमबुद्ध नगर के सहकारी समितियों के सहायक रजिस्ट्रार के कार्यालय के लोक सूचना अधिकारी से कतिपय सूचनाओं की ईप्सा की । धारा 3 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए सहायक रजिस्ट्रार ने तारीख 5 अगस्त, 2014 के पत्र द्वारा चतुर्थ प्रत्यर्थी के आवेदन को द्वितीय याची को इस निर्देश के साथ अंतरित कर दिया कि चतुर्थ प्रत्यर्थी को ईप्सित सूचनाएं उपलब्ध कराई जाएं । स्वीकृत रूप से राज्य सूचना आयोग के समक्ष सहकारी समिति द्वारा फाइल किए गए आक्षेप लंबित हैं और उनका निस्तारण अभी तक नहीं हुआ है । द्वितीय प्रत्यर्थी ने तारीख 5 अगस्त, 2015 के पत्र की प्राप्ति पर चतुर्थ प्रत्यर्थी को तारीख 2 सितम्बर, 2014 का एक पत्र यह अभिकथित करते हुए संबोधित किया कि प्रथम प्रत्यर्थी सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत लोक प्राधिकारी नहीं है, इसलिए वे सूचना उपलब्ध कराए जाने के लिए किसी बाध्यता के अधीन नहीं हैं । इस पर चतुर्थ प्रत्यर्थी ने एक अन्य परिवाद फाइल किया जो राज्य सूचना आयोग के समक्ष लंबित है । इन कार्यवाहियों के प्रयोजनार्थ यह आवश्यक नहीं है कि अभिलेख पर इन वैयक्तिक परिवादों, जिनको चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया है और जो लंबित है, के अभिलेखों का अनावश्यक भार लादा जाए, सिवाय इसके कि याचियों ने शिकायतों की पोषणीयता पर आक्षेप इस आधार पर फाइल किए हैं कि प्रथम याची सूचना के अधिकार अधिनियम की धारा 2(ज) के अधीन लोक प्राधिकारी नहीं है ।

राज्य विधान को चुनौती :

4. उत्तर प्रदेश राज्य के विधान-मंडल ने 2013 का उत्तर प्रदेश सहकारी समिति (संशोधन) अधिनियम अधिनियमित किया । संशोधन अधिनियम तारीख 15 फरवरी, 2013 को प्रभाव में आया । संशोधन अधिनियम की धारा 6 द्वारा मूल अधिनियम में धारा 113 को सम्मिलित किया गया है और जो नीचे उपबंधित है :–

> "113. **विवरणी फाइल किया जाना** – (1) प्रत्येक सहकारी समिति रजिस्ट्रार या उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य अधिकारी के समक्ष प्रत्येक वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर विवरणी फाइल करेगी

जिसमें निम्नलिखित मामले सम्मिलित होंगे, अर्थात् –

(क) उसके क्रियाकलापों की वार्षिक रिपोर्ट ;

(ख) उसके खातों के अंकेषित कथन ;

(ग) अधिशेष के निस्तारण की योजना, जैसाकि सहकारी समिति की आम सभा द्वारा अनुमोदन किया गया हो ;

(घ) सहकारी समिति की उपविधि के संशोधनों, यदि कोई हों, की सूची ;

(ङ) उसकी आम सभा आयोजित कराए जाने और निर्वाचन कराए जाने, जब कराया जाना निर्धारित हो की तारीख के संबंध में घोषणा ; और

(च) कोई अन्य सूचना जैसीकि रजिस्ट्रार द्वारा अपेक्षित हो ।

(2) प्रत्येक सहकारी समिति 2005 के सूचना का अधिकार अधिनियम द्वारा आच्छादित होगी ।"

5. संशोधन प्रभावी किए जाने के पश्चात् गौतमबुद्ध नगर के सहायक आयुक्त और सहायक रजिस्ट्रार (सहकारिता) द्वारा तारीख 20 नवम्बर, 2013 का एक कार्यालय ज्ञापन यह अनुध्यात करते हुए जारी किया गया कि उत्तर प्रदेश राज्य में समस्त सहकारी समितियां यथा संशोधित धारा 113(2) के उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए सूचना का अधिकार अधिनियम द्वारा शासित होंगी । एक निदेश जारी किया गया कि राज्य में सभी सहकारी समितियों के सचिवों को लोक सूचना अधिकारियों के रूप में पदनामित किया जाएगा । प्रथम अपीली प्राधिकारियों को भी इस कार्यालय ज्ञापन के उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए पदनामित कर दिया गया ।

संवैधानिक विधिमान्यता को चुनौती :

6. याचियों ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन फाइल की गई इन कार्यवाहियों को चुनौती दी है :–

(i) अधिनियम की धारा 113(2) की संवैधानिक विधिमान्यता को इस आधार पर कि उपबंध अधिकारातीत है ;

(ii) गौतमबुद्ध नगर के सहायक रजिस्ट्रार (सहकारिता) द्वारा जारी तारीख 20 नवम्बर, 2013 के कार्यालय ज्ञापन की वैधता को ; और

(iii) परिवाद जो राज्य सूचना आयोग के समक्ष लंबित है ।

7. धारा 113(2) की संवैधानिक विधिमान्यता को चुनौती इस आधार पर दी गई है कि संशोधन के परिणामस्वरूप राज्य में समस्त सहकारी समितियों को इस बात को ध्यान में रखे बिना संसद् द्वारा अधिनियमित सूचना का अधिकार अधिनियम की परिधि के अंतर्गत लाया गया है कि ये सहकारी समितियां केन्द्रीय अधिनियम अर्थात् सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत लोक प्राधिकारी गठित करती हैं या नहीं ।

8. याचियों की ओर से दी गई दलीलें इस प्रकार हैं :–

(i) सूचना का अधिकार अधिनियम संसद् द्वारा संविधान के अनुच्छेद 246(1) के अधीन प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में अधिनियमित किया गया है, विधान की विषय-वस्तु सातवीं अनुसूची की संघ सूची की प्रविष्टि 97 में सम्मिलित है ;

(ii) संसद् द्वारा अधिनियमित विधान द्वारा आच्छादित विषय-वस्तु संघ सूची की प्रविष्टि 97 के अधीन संसद् की अनन्य विधायी सक्षमता के अंतर्गत आती है और इसलिए राज्य (उत्तर प्रदेश राज्य विधान-मंडल) सूचना का अधिकार अधिनियम के उपबंधों को धारा 113(2) के उपबंधों में अधिनियमित करने की विधायी सक्षमता से निरावृत्त है ;

(iii) धारा 113(2) के उपबंधों को अधिनियमित करते हुए राज्य विधान-मंडल ने समावेशित किए जाने के द्वारा विधान बनाने की ईप्सा की ; वर्तमान मामले में संसद् द्वारा अधिनियमित केन्द्रीय विधान को समावेशित किया जाना है । जब तक कि राज्य विधान-मंडल उस विषय-वस्तु पर विधि अधिनियमित करने की सक्षमता नहीं रखता जिस पर धारा 113(2) को अधिनियमित किया गया, धारा 113(2) का विधि निर्माण राज्य की विधायी शक्ति के बाहर होगा । चूंकि सूचना का अधिकार अधिनियम संसद् की अवशिष्ट विधायी शक्ति की परिधि के अंतर्गत आता है, राज्य विधान-मंडल को यह शक्ति प्राप्त नहीं थी कि वह धारा 113(2) के माध्यम से इसके लिए उपबंधित करता कि राज्य में स्थित सभी सहकारी समितियां संसद् द्वारा अधिनियमित सूचना का अधिकार अधिनियम द्वारा शासित होंगी ; और

(iv) तारीख 20 नवम्बर, 2013 को सहायक रजिस्ट्रार

(सहकारिता) द्वारा जारी किया गया कार्यालय ज्ञापन, जिसके द्वारा सहकारी समितियों के सचिवों को लोक सूचना अधिकारियों के रूप में पदनामित कर दिया गया, उसकी कानूनी और प्रशासनिक शक्ति के परे है । यदि किसी विशिष्ट सहकारी समिति को सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत लोक प्राधिकारी अभिनिर्धारित किया जाता है तो उस विशिष्ट अस्तित्व (सहकारी समिति) को धारा 5(1) के अधीन लोक सूचना अधिकारी को पदनामित करने का अधिकार होगा । सहायक रजिस्ट्रार ने इस शक्ति को हड़पने के द्वारा सहकारी समितियों को स्वायत्तता का अतिलंघन किया है ।

दलीलें :

9. धारा 113(2) के उपबंधों को दी गई संवैधानिक चुनौती को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय ने महाधिवक्ता को नोटिस जारी किया । उस नोटिस के मतावलंबन में विद्वान् स्थायी काउंसेल राज्य की ओर से उपस्थित हुए और उन्होंने दलील दी कि :–

(i) संविधान के भाग 9(ख) के उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए राज्य विधान-मंडल को सहकारी समितियों के आमेलन, विनियमन और परिसमापन के संबंध में विधायी शक्तियां निहित की गई हैं, इस संबंध में अनुच्छेद 243यझ के उपबंधों को विशिष्ट रूप से निर्दिष्ट किया गया ;

(ii) अनुच्छेद 243यथ राज्य के विधान-मंडल को सहकारी समितियों से संबंधित अपराधों के बाबत उपबंध बनाने और उन अपराधों के बाबत शास्तियां अधिरोपित करने के लिए सशक्त करता है । ये अपराध और शास्तियां ऐसी स्थितियों तक विस्तारित हो सकते हैं जहां कोई सहकारी समिति या उसका कोई अधिकारी असत्य विवरणी या असत्य सूचना प्रस्तुत करता है या इस संबंध में प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा उससे अपेक्षित सूचना उपलब्ध कराने में जानबूझकर विफल रहता है ;

(iii) भाग 9ख के उपबंध यह उपदर्शित करते हैं कि राज्य विधान-मंडल में सहकारी समितियों को विनियमित करने का प्राधिकार निहित है । इसके अतिरिक्त सातवीं अनुसूची की राज्य सूची की प्रविष्टि 32 सहकारी समितियों पर विचार करती है और राज्य विधान-

मंडल अनुच्छेद 246(3) के अधीन सहकारी समितियों के संबंध में विधियां अधिनियमित करने के लिए सक्षम हैं ; और

(iv) वर्तमान मामले में राज्य विधान-मंडल ने आवश्यक रूप से जिस बात से अपेक्षा की है कि वह यह है कि सहकारी समितियां सूचनाएं प्रदान करें और ऐसा करना संविधान के अनुच्छेद 246 द्वारा संसद् के लिए आरक्षित विधायी क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं है ।

10. चतुर्थ प्रत्यर्थी जो व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुआ, ने **थलप्पलम सर्विस कोआपरेटिव बैंक** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया । चतुर्थ प्रत्यर्थी की दलील यह है कि उसके द्वारा सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार से सूचनाएं ईप्सित थीं । उच्चतम न्यायालय ने निर्णय पारित किए जाने के दौरान अभिनिर्धारित किया कि सहकारी समितियां, जो कई लंबित कार्यवाहियों के उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी हैं, सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत लोक प्राधिकारी नहीं है । तथापि, उच्चतम न्यायालय द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि यदि इस तथ्य के बाबत कोई विवाद, है कि क्या कोई विशिष्ट समिति लोक प्राधिकारी है या नहीं, तो राज्य सूचना आयोग इसकी जांच करने का हकदार होगा । इसलिए राज्य सूचना अधिकार को अधिकार है कि वह इस बाबत जांच करे कि क्या प्रथम याची सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2ज के अर्थान्तर्गत लोक प्राधिकारी है । इसके अतिरिक्त यह दलील दी गई कि यदि प्रथम याची को सूचना का अधिकार अधिनियम धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत लोक प्राधिकारी अभिनिर्धारित किया जाता है, तो चतुर्थ प्रत्यर्थी सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार से सहकारी समिति के संबंध में सूचना की मांग करने का हकदार होगा । ऐसी सूचना जिसको सहकारी समितियों का रजिस्ट्रार अधिनियम के अधीन सहकारी समिति से प्राप्त कर सकता है, सूचना होगी जिसके बाबत यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वह लोक प्राधिकारी अर्थात् रजिस्ट्रार के नियंत्रण में होगी और जिसको चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा विधिसम्मत रूप से प्राप्त किया जा सकता है । परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किया गया ।

इन कार्यवाहियों की परिधि :

11. इसके पहले कि हम संवैधानिक चुनौती जो याचियों की ओर से

---

[1] (2013) 16 एस. सी. सी. = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. (सप्ली.) 437.

दी गई, पर विचार करें तो यह आवश्यक होगा कि वर्तमान कार्यवाहियों की परिधि को परिभाषित किया जाए याचियों ने अधिनियम की यथासंशोधित धारा 113(2) और गौतमबुद्ध नगर के सहायक रजिस्ट्रार (सहकारिता) द्वारा तारीख 20 नवम्बर, 2013 को जारी कार्यालय ज्ञापन की विधिमान्यता को चुनौती दी है जिसके द्वारा जिलों में सभी सहकारी समितियों से उनके सचिवों को लोक सूचना अधिकारी के रूप में पदनामित किए जाने और प्रथम अपील प्राधिकारियों के लिए उपबंधित किए जाने की ईप्सा की गई है । संवैधानिक चुनौती और कार्यालय ज्ञापन की विधिमान्यता के संबंध में चुनौती पर न्यायालय द्वारा विचार किया जाना है । याचियों ने इन दो चुनौतियों, जो न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का अवलंब लिए जाने के प्रयोजनार्थ हैं, के अतिरिक्त इस न्यायालय से राज्य सूचना आयोग के समक्ष कार्यावाहियों को अभिखंडित किए जाने की एक रिट की भी ईप्सा की है । चतुर्थ प्रत्यर्थी ने सूचना का अधिकार अधिनियम के अधीन या तो प्रत्यक्षतः सहकारी समिति से या सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार से, जैसा भी मामला हो, सूचना मांगी है । जहां तक सहकारी समिति से प्रत्यक्षतः प्राप्त की जाने वाली सूचना का संबंध है, चतुर्थ प्रत्यर्थी ने स्वतंत्र रूप से एक सूचना का प्रकटीकरण चाहा है और वह राज्य सूचना आयोग के समक्ष कार्यवाहियों का सामना कर रहा है । विवाद्यक यह है कि क्या प्रथम याची लोक प्राधिकारी है, यह **थलप्पलम सर्विस कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय में की गई मताभिव्यक्ति से स्पष्ट है जहां यह अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "657. हमने तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि इन अपीलों में समितियां लोक प्राधिकारी नहीं हैं और इसलिए वे सूचना का अधिकार अधिनियम के अधीन किसी नागरिक द्वारा ईप्सित कोई सूचना उपलब्ध कराने के लिए बाध्य नहीं हैं । इसी प्रकार यदि तथ्यों के आधार पर कोई विवाद है कि क्या कोई विशिष्ट समिति लोक प्राधिकारी है या नहीं, राज्य सूचना आयोग इस प्रश्न पर विचार कर सकता है और इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि क्या प्रश्नगत समिति इस निर्णय में अधिकथित परीक्षण को संतुष्ट कर सकी है ।"

12. जहां तक सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार का संबंध है, सूचना प्राप्त करने के अधिकार पर उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई निम्नलिखित मताभिव्यक्ति में विचार किया गया है :–

> "67. सहकारी समिति अधिनियम के अधीन कार्यरत सहकारी

समितियों का रजिस्ट्रार अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत "लोक प्राधिकारी" है । सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार को लोक प्राधिकारी के रूप में अलग-अलग अधिनियमों, जिनके अधीन वह कार्य करता है, अनेक कानूनी शक्तियां प्रदान की गई हैं । वह सूचना का अधिकार अधिनियम के अधीन बाध्यताओं का अनुपालन करने और इस अधिनियम के अधीन कराने किसी नागरिक को सूचना उपलब्ध के दायित्वाधीन भी है । सूचना जिसको उपलब्ध कराए जाने की उससे प्रत्याशा की जाती है, वह सूचना है जो अधिनियम की धारा 8 के अधीन उपबंधित सीमाओं के अध्यधीन रहते हुए सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2च में अनुध्यात है । रजिस्ट्रार, जहां तक विधि अनुज्ञा प्रदान करती है, किसी भी समिति से, जिस पर वह सहकारी समिति अधिनियम के अधीन पर्यवेक्षणीय और प्रशासनिक नियंत्रण रखता है, सूचना एकत्र भी कर सकता है । परिणामस्वरूप उस सूचना के अतिरिक्त जो धारा 2(च) के अधीन उसको उपलब्ध है, वह उन सूचनाओं को, जिस सीमा तक विधि द्वारा अनुज्ञा प्राप्त हो, समिति से भी एकत्रित कर सकता है । रजिस्ट्रार उन सूचनाओं के प्रकटीकरण के दायित्वाधीन नहीं है, यदि वह सूचना अधिनियम की धारा 8(1)(ञ) के अधीन आती है । हमारी जानकारी में ऐसा कोई उपबंध नहीं लाया गया है जो यह उपदर्शित करता हो कि कोई रजिस्ट्रार सहकारी समिति अधिनियम के अधीन किसी सहकारी बैंक में नागरिकों या सदस्यों द्वारा रखे गए बैंक खातों के विवरण की मांग कर सके । केवल वही सूचना, जो सहकारी समिति अधिनियम के अधीन सहकारी समितियों का रजिस्ट्रार किसी समिति से प्राप्त कर सकता है और जो लोक प्राधिकारी द्वारा धारित है और उसके नियंत्रण में है, सूचना कही जा सकती है । यहां तक कि वे सूचनाएं जिनको रजिस्ट्रार उपलब्ध कराने के लिए विधितः दायित्वाधीन नहीं है, जैसा कि पहले ही उपदर्शित किया जा चुका है, यदि वे सूचनाएं अधिनियम की धारा 8ञ में उल्लिखित छूट प्राप्त कोटि के अन्तर्गत आती हैं । सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के अलावा अन्य लोक प्राधिकारी भी हो सकते हैं जो विधि के अधीन किसी समिति के सदस्य द्वारा पोषित किसी निजी खाते की सूचना सहकारी बैंक से प्राप्त कर सकते हैं, ऐसी स्थिति में विशिष्ट परिस्थितियों में समिति को वह सूचना उपलब्ध करानी होगी । किन्तु इस प्रकार की मांग को कानूनी समर्थन होना चाहिए ।

13. यह विवाद्यक कि क्या रजिस्ट्रार उन सूचनाओं का प्रकटीकरण करने के लिए बाध्य है जिनकी ईप्सा चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा की गई है या क्या वह सूचना, सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 8 द्वारा अनुध्यात अपवादों की कोटियों के अन्तर्गत आती है, राज्य सूचना आयोग द्वारा प्रथमदृष्ट्या विनिर्धारित किया जाएगा । इसलिए आरंभिकतः हम न्यायालय के समक्ष विवाद की परिधि को परिभाषित करते हुए यह स्पष्ट कर देते हैं कि यह विवाद्यक कि क्या प्रथम याची धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत लोक प्राधिकारी है और साथ ही यह विवाद्यक कि क्या वह सूचना जिसकी ईप्सा रजिस्ट्रार से की गई है, सूचना का अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत प्रकट किए जाने योग्य है, एक ऐसा मामला है जिसका निर्णय राज्य सूचना आयोग द्वारा उन आक्षेपों को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा जो याची द्वारा फाइल किए गए हैं ।

संवैधानिक विधिमान्यता के विवाद्यक का विश्लेषण :

14. अब इस पृष्ठभूमि में हम उस संवैधानिक चुनौती पर विचार करते हैं जो इस न्यायालय के समक्ष दी गई है ।

(i) **सूचना का अधिकार अधिनियम**

संसद् ने नागरिकों को सूचना के अधिकार की प्रवर्तनीय व्यवहारिक व्यवस्था उपलब्ध कराने और लोक प्राधिकारियों के नियंत्रण के अधीन सूचना तक उनकी पहुंच को सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ सूचना का अधिकार अधिनियम अधिनियमित किया जिससे कि प्रत्येक लोक प्राधिकारी के कार्यों में पारदर्शिता और जवाबदेही को प्रोन्नत किया जा सके । धारा 2 में परिभाषाएं समाविष्ट हैं । अभिव्यक्ति "लोक प्राधिकारी" को धारा 2 के खंड (ज) निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है :–

> "(ज) "लोक प्राधिकारी" से –
>
> (क) संविधान द्वारा या उसके अधीन ;
>
> (ख) संसद् द्वारा बनाई गई किसी अन्य विधि द्वारा ;
>
> (ग) राज्य विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी अन्य विधि द्वारा ;
>
> (घ) समुचित सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना या किए गए आदेश द्वारा, स्थापित या गठित कोई प्राधिकारी या निकाय या स्वायत्त सरकारी संस्था अभिप्रेत है, और इसके अन्तर्गत समुचित सरकार के स्वामित्वाधीन, नियंत्रणाधीन या उसके द्वारा प्रत्यक्ष या

अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा, –

(i) पूर्णतया वित्तपोषित कोई गैर सरकारी संगठन ;

(ii) कोई अन्य निकाय भी है ;

खंड (ञ) अभिव्यक्ति सूचना का अधिकार को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित करता है :–

"(ञ) "सूचना का अधिकार" से इस अधिनियम के अधीन पहुंच योग्य सूचना का, जो किसी लोक प्राधिकारी द्वारा या उसके नियंत्रणाधीन धारित है, अधिकार अभिप्रेत है और जिसमें निम्नलिखित का अधिकार सम्मिलित है ;

(i) कृति, दस्तावेजों, अभिलेखों का निरीक्षण ;

(ii) दस्तावेजों या अभिलेखों के टिप्पण, उद्धरण या प्रमाणित प्रतिलिपि लेना ;

(iii) सामग्री के प्रमाणित नमूने लेना ;

(iv) डिस्केट, फ्लापी, टेप, वीडियो कैसेट के रूप में या किसी अन्य इलैक्ट्रानिक रीति में या प्रिंट आउट के माध्यम से सूचना को, जहां ऐसी सूचना किसी कम्प्यूटर या किसी अन्य युक्ति में भण्डारित की जाती है, अभिप्राप्त करना ।"

15. धारा 3 उपबंधित करती है कि इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए सभी नागरिकों को सूचना का अधिकार होगा । सूचना के अधिकार को धारा 2(ञ) इस अर्थ में परिभाषित किया गया है कि "सूचना का अधिकार" से इस अधिनियम के अधीन पहुंच योग्य सूचना का अधिकार, जो किसी लोक प्राधिकारी द्वारा या उसके नियंत्रणाधीन धारित है, अभिप्रेत है । सूचना जिसके प्रकटीकरण को अभिप्राप्त करने का अधिकार नागरिकों को प्रकटीकरण की तत्समान बाध्यता के साथ प्रदत्त है, वह सूचना है जो इस अधिनियम के अधीन पहुंच के अन्तर्गत है और जो लोक प्राधिकारी द्वारा धारित है या उसके नियंत्रणाधीन है । धारा 2(ज) अभिव्यक्ति "लोक प्राधिकारी" को दो भागों में परिभाषित करती है : प्रथम भाग परिभाषित करता है कि अभिव्यक्ति का अर्थ क्या है जबकि दूसरा भाग परिभाषित करता है कि इसमें क्या-क्या सम्मिलित है । विधायी उपायों के रूप में विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि जहां कोई विधान-मंडल "अभिप्रेत है और समाविष्ट है" सूत्र का प्रयोग परिभाषा के भाग के रूप में

करता है, तो इससे परिभाषा का "अभिप्रेत है" भाग का सुविस्तृत होना आशयित है जबकि "समाविष्ट है" भाग उस सीमा तक विस्तारित हो जाता है जो अन्यथा रूप से परिभाषा की परिधि के भीतर आता है । विधान-मंडल ने परिभाषा के बाबत "अभिप्रेत है और समाविष्ट है" सूत्र का प्रयोग करते हुए धारा 2(ज) में एक संपूर्ण परिभाषा को उपदर्शित किया है कि कौन-सी बातें "लोक प्राधिकारी" गठित करती हैं । लोक प्राधिकारी होने के लिए किसी स्वशासन का प्राधिकारी निकाय या संस्था संविधान द्वारा या उसके अन्तर्गत या संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के अन्तर्गत या राज्य विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या किसी अधिसूचना द्वारा जिसको समुचित सरकार द्वारा जारी या पारित किया गया हो, द्वारा स्थापित या गठित की जानी चाहिए । परिभाषा के पश्चात्वर्ती भाग में सम्मिलित है (i) समुचित सरकार के स्वामित्व वाले संचालित या सारवान् रूप से वित्त-पोषित निकाय ; या (ii) समुचित सरकार द्वारा प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः सारवान् रूप से उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा वित्तपोषित गैर सरकारी संगठन । अभिव्यक्ति "समुचित सरकार" को धारा 2 के खंड (क) में निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया गया है :–

> "(क) "समुचित सरकार" से किसी ऐसे लोक प्राधिकरण के संबंध में जो –
>
> (i) केन्द्रीय सरकार या संघ राज्यक्षेत्र द्वारा स्थापित, गठित, उसके स्वामित्वाधीन, नियंत्रणाधीन या उसके द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा पूर्णतया वित्तपोषित की जाती है, केन्द्रीय सरकार अभिप्रेत है ;
>
> (ii) राज्य सरकार द्वारा स्थापित, गठित उसके स्वामित्वाधीन, नियंत्रणाधीन या उसके द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा पूर्णतया वित्तपोषित की जाती है, राज्य सरकार अभिप्रेत है ।"

थलप्पलम सर्विस कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया निर्णय :

16. **थलप्पलम सर्विस कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में यह विवाद्यक उत्पन्न हुआ कि क्या 1969 के केरल सहकारी समिति अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्ट्रीकृत सहकारी समिति सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा

2(ज) के अधीन अभिव्यक्ति "लोक प्राधिकारी" की परिभाषा के अन्तर्गत आएगी कि नहीं । इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :–

> "अतः हम एक ऐसे निकाय जिसको कानून द्वारा सृजित किया गया है और एक ऐसे निकाय जिसको अस्तित्व में आने के पश्चात् किसी कानून के उपबंधों के अनुसार नियंत्रित किया जाता है के मध्य स्पष्ट रूप से विभेद कर सकते हैं । समितियां, जिनसे हम संबद्ध हैं, पश्चात्वर्ती कोटि के अन्तर्गत आती हैं जिनको समिति अधिनियम द्वारा नियंत्रित किया जाता है और वे कानूनी निकाय नहीं हैं किन्तु केरल सहकारी समिति अधिनियम की धारा 9 के अर्थान्तर्गत मात्र निगमित निकाय है जिनको शाश्वत उत्तराधिकार (परपेचुअल सक्सेशन) और सामान्य मुद्रा (कामन सील) प्राप्त है और इसलिए उनको संपत्ति धारित करने की शक्ति प्राप्त होती है, वे संविदा में प्रविष्ट हो सकते हैं, वाद और अन्य विधिक कार्यवाहियां संस्थित कर सकते हैं और अपनी प्रतिरक्षा कर सकते हैं और इस प्रयोजन के लिए सभी आवश्यक कार्य कर सकते हैं जिनके लिए उनको गठित किया गया है । समिति अधिनियम की धारा 27 सुस्पष्टतः अभिकथित करती है कि किसी समिति का अंतिम प्राधिकार उसके सदस्यों की आम सभा में निहित होता है और प्रत्येक समिति का प्रबंधन समिति अधिनियम की धारा 27 के अधीन उपबंधित उपविधियों के निबंधनों के अनुसार गठित उसकी प्रबंध समिति द्वारा किया जाता है । जहां तक ऐसी समितियों का संबंध है अंतिम प्राधिकार उसकी आम सभा होती है न कि सहकारी समिति रजिस्ट्रार या राज्य सरकार ।"

17. उच्चतम न्यायालय ने उल्लेख किया कि सहकारी समितियां निस्संदेह रूप से कानूनी प्राधिकारियों के नियंत्रणाधीन होती हैं जैसे कि रजिस्ट्रार किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि राज्य किसी सहकारी समिति के मामलों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण, जो गहरा और अत्यंत व्यापक हो, रखेगा । इसके अतिरिक्त सहकारी समितियां, जो निगमित निकाय हैं, के ऊपर कानून के अन्तर्गत पर्यवेक्षणीय या सामान्य विनियमन उस निकाय (सहकारी समिति) के क्रियाकलापों को राज्य के नियंत्रण के अधीन, जिससे कि उनको अभिव्यक्ति "राज्य" या "राज्य के अभिकरण" के अर्थान्तर्गत लाया जा सके, नहीं लाएगा । उच्चतम न्यायालय द्वारा निपटाए गए सहकारी सोसाइटियों के मामलों के बंडल में यह अभिनिर्धारित किया

गया कि वे न तो निकाय है और न ही संविधान के अन्तर्गत स्थापित या गठित किसी स्वशासन के निकाय या संस्था और न ही राज्य विधान-मंडल द्वारा बनाए गए किसी विधि के अधीन या किसी समुचित सरकार द्वारा जारी किए गए किसी अधिसूचना के माध्यम से बनाए गए निकाय या संस्था । जहां तक नियंत्रण के पहलू का संबंध है, उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :–

> "हमारा विचार है कि जब अभिव्यक्ति "नियंत्रित", जो शब्दों "स्वामित्व वाले निकाय" और "सारवान् रूप से वित्तपोषित" के मध्य उपस्थित है, के अर्थ का हमारे द्वारा परीक्षण किया गया, तो समुचित सरकार का नियंत्रण सारभूत रूप से नियंत्रण की प्रकृति वाला होना चाहिए । अतः किसी कानून या अन्यथा रूप से किसी निकाय की मात्र "पर्यवेक्षण" या "विनियम" उस निकाय को सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2(ज)(i) के अर्थान्तर्गत "लोक प्राधिकारी" नहीं बना देगा । अन्य शब्दों में, बिल्कुल उसी प्रकार से जैसे कि कोई निकाय, जिसका स्वामित्व समुचित सरकार के पास है और कोई निकाय जिसको समुचित सरकार द्वारा सारभूत रूप से वित्तपोषित किया गया है, तो ऐसे निकाय का समुचित सरकार द्वारा नियंत्रण मात्र पर्यवेक्षणीय या विनियामक नहीं होगा बल्कि सारभूत होगा । सरकारी समितियों के रजिस्ट्रार और अन्य द्वारा सहकारी समिति अधिनियम के अन्तर्गत प्रयोग की जानी वाली शक्तियां मात्र पर्यवेक्षणीय प्रकृति की होती हैं जिनके कारण समिति के प्रबंधतंत्र या मामलों को नियंत्रित किए जाने के प्रयोजनार्थ अधिकार में रखने या उनमें मध्यक्षेप नहीं किया जा सकता । कानूनी प्रबंध और नियंत्रण अलग-अलग सहकारी समिति अधिनियमों द्वारा समिति के प्रबंध समितियों या निदेशक मंडलों को प्रदत्त है न कि सहकारी समिति अधिनियम के अधीन प्राधिकारियों को ।

18. उच्चतम न्यायालय के समक्ष फाइल की गई अपीलों में यह अभिनिर्धारित करते हुए कि सहकारी समितियां सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थार्न्तगत लोक प्राधिकारी नहीं हैं, यह अभिनिर्धारित किया गया कि (i) यह दर्शित करने का भार आवेदक पर होगा कि कोई निकाय समुचित सरकार के स्वामित्व के अन्तर्गत है या उसके द्वारा नियंत्रित है या उसके द्वारा प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा सारभूत रूप से वित्तपोषित है, जो सूचना की ईप्सा

करता है और इसका परीक्षण राज्य सूचना आयोग द्वारा किया जा सकता है; (ii) जहां तथ्यों के आधार पर इस बाबत विवाद है कि क्या कोई विशिष्ट समिति लोक प्राधिकारी है, इस विवाद्यक का परीक्षण सूचना आयोग कर सकता है और इस प्रश्न को निर्णीत कर सकता है कि क्या समिति निर्णय में अधिकथित परीक्षण को संतुष्ट कर पाई है ।

2005 का सूचना का अधिकार अधिनियम : संघ सूची की प्रविष्टि 97 को निदेशित

19. सूचना का अधिकार अधिनियम संसद् द्वारा संविधान के अनुच्छेद 246(1) के अधीन प्रदत्त सर्वांगीण विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए अधिनियमित किया गया है । अनुच्छेद 246(1) सातवीं अनुसूची की संघ सूची में उल्लिखित मामलों के संबंध में विधि बनाने की अनन्य शक्ति खंड (2) और (3) में किसी अन्य बात के समाविष्ट होने पर भी संसद् में निहित करता है । अनुच्छेद 246 का खंड (3) राज्य विधान-मंडल को संसद् द्वारा अधिनियमित विधान के अधीन रहते हुए सातवीं अनुसूची की राज्य सूची में समाविष्ट विषयों के संबंध में विधियां अधिनियमित करने की अनन्य विधायी शक्ति खंड (1) जो संघ सूची पर संसद् की अनन्य विधायी शक्ति पर विचार करता है और खंड (2) जो समवर्ती सूची और राज्य विधान-मंडलों पर संसद् की अनन्य विधायी शक्ति पर विचार करता है के अधीन रहते हुए प्रदान करता है ।

अनुच्छेद 246 का खंड (3) राज्य विधान-मंडलों को सातवीं अनुसूची की राज्य सूची में समाविष्ट विषयों के संबंध में, विधियां अधिनियमित करने की अनन्य विधायी शक्ति खंड (1) के अधीन रहते हुए प्रदत्त करता है जो संघ सूची में समाविष्ट विषयों पर संसद् की अनन्य विधायी शक्ति पर विचार करता है और खंड (2) के अधीन रहते हुए, जो समवर्ती सूची के अधीन रहते हुए संसद् की अनन्य विधायी शक्ति पर विचार करता है । सूचना का अधिकार अधिनियम सातवीं अनुसूची की संघ सूची की प्रविष्टि 97 को निर्देशित है जो संसद् को संविधान के अनुच्छेद 248 के साथ अवशिष्ट शक्ति प्रदत्त करता है । सातवीं अनुसूची की राज्य या समवर्ती सूची में कोई ऐसी विनिर्दिष्ट प्रविष्टि नहीं है जो सूचना के अधिकार को सम्मिलित करती हो । सूचना का अधिकार अधिनियम संसद् द्वारा अवशिष्ट शक्तियों के प्रयोग में अधिनियमित किया गया है । वास्तविकता यह है कि

हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि **नमित शर्मा** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि :–

> "2005 का अधिनियम संसद् द्वारा विधान अधिनियमित करने की उसकी अवशिष्ट शक्ति के प्रयोग में अधिनियमित किया गया था और संघ सूची की प्रविष्टि 97 को निर्देशित है । **नमित शर्मा** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को बाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा भारत संघ **बनाम** नमित शर्मा (2013) 1 एस. सी. सी. 745 वाले मामले में पुनर्विलोकित किया गया । पुनर्विलोकन इस घोषणा का किया गया था जिसको उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रथम निर्णय में मुख्य सूचना आयुक्तों या सूचना आयुक्तों की नियुक्ति के संबंध में निर्देश देते हुए, जैसा भी मामला हो, जारी किया गया था । विनिर्माण की अवशिष्ट शक्ति का प्रयोग करते हुए, सूचना का अधिकार अधिनियम अधिनियमित करने की संसद् की विधायी सक्षमता के संबंध में विवाद्यक पुनर्विलोकन की विषय-वस्तु नहीं था । चाहे जैसी भी स्थिति हो, इस मूल सिद्धांत के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता कि सूचना का अधिकार अधिनियम विनिर्माण की अवशिष्ट शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद् द्वारा अधिनियमित किया गया था ।"

राज्य द्वारा विधि निर्माण की विधिमान्यता : धारा 113(2)

20. जब एक बार यह अभिनिर्धारित कर दिया गया है कि सूचना का अधिकार अधिनियम संसद् द्वारा उसकी विनिर्माण की अवशिष्ट शक्ति के मतावलम्बन में अधिनियमित किया गया, तो वह विवाद्यक जिस पर विचार किए जाने की आवश्यकता है यह है कि क्या राज्य विधान-मंडल अधिनियम का विधायी संशोधन करते हुए यह आज्ञा कर सकता कि राज्य में स्थित सभी सहकारी समितियां सूचना का अधिकार अधिनियम द्वारा शासित होंगी । यहां पर विवाद्यक यह नहीं है कि क्या कोई विशिष्ट सहकारी समिति केन्द्रीय अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत लोक प्राधिकारी है, जिसको सूचना का अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत अधिकथित सिद्धांतों के अनुसार सूचना आयुक्त द्वारा निर्णीत किया जाना है । राज्य विधान-मंडल ने आवश्यक रूप से जो किया है, वह यह है कि इस बात को ध्यान में रखते हुए कि कोई सहकारी समिति सूचना का

---

[1] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. (सप्ली.) 867.

अधिकार अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत लोक प्राधिकारी की परिभाषा के अन्तर्गत आती है या नहीं, सभी सहकारी समितियां केन्द्रीय अधिनियम द्वारा शासित होंगी । राज्य विधान-मंडल सूचना का अधिकार अधिनियम के विषय पर विधान अधिनियमित करके ऐसा कर सकता था । किन्तु राज्य विधान-मंडल ने जो अधिनियमित किया यह है कि सूचना का अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत समाविष्ट केन्द्रीय विधान को राज्य विधान में सम्मिलित कर दिया । जब तक कि राज्य विधान-मंडल किसी ऐसे विषय पर विधि अधिनियमित करने में सक्षम नहीं होता, उसको यह अधिकार नहीं होगा कि सूचना का अधिकार अधिनियम जिसको संसद् द्वारा अधिनियमित किया गया है राज्य में स्थित समस्त सहकारी समितियों पर लागू कराए जाने के लिए उपबंधित करें । यदि अधिनियम की धारा 113(2) की परिधि सूचना का अधिकार अधिनियम के उपबंधों के साथ समविस्तीर्ण की जानी थी तो धारा 113(2) को कोई तात्विक अर्थ प्रदान नहीं किया जा सकता किन्तु चुनौती मूलतः विधायी सक्षमता की अनुपस्थिति के आधार पर दी गई है । एक बार यह स्थिति स्थापित हो जाने पर विधान-मंडल उसी विषय के संबंध में धारा 113(2) के विधायी नुस्खे द्वारा विधि बनाने और अधिनियमित करने के लिए सक्षम नहीं था कि केन्द्रीय विधि निर्माण राज्य में स्थित सभी सहकारी समितियों पर लागू होगा । वास्तव में, धारा 113(2) के उपबंधों का प्रभाव सूचना का अधिकार अधिनियम की परिधि को विस्तृत करना है जिसके परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित प्रत्येक सहकारी समिति इस बात को ध्यान में रखे बिना कि कोई सहकारी समिति उचित रीति में धारा 2(ज) के अधीन 'लोक प्राधिकारी' की परिभाषा की परिधि के अन्तर्गत आती है या नहीं, केन्द्रीय अधिनियम द्वारा नियंत्रित होगी । यह स्पष्टतः अननुज्ञेय है और राज्य विधान-मंडल की विधायी सक्षमता के अन्तर्गत नहीं आता ।

समावेशित किए जाने द्वारा विधायन की विधिमान्यता :

21. अधिनियम की धारा 113(2) के उपबंधों द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य के विधान-मंडल ने संसदीय विधान सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 को राज्य अधिनियमिती 1965 के उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम में सम्मिलित कर दिया है । सम्मिलित किया जाना विधान-मंडल द्वारा अपनाई जाने वाली एक विधायी युक्ति है जिसके द्वारा एक पूर्ववर्ती अधिनियम को एक पश्चात्वर्ती अधिनियम में सम्मिलित कर दिया जाता है । सम्मिलित किए जाने पर पूर्ववर्ती अधिनियम के उपबंध पश्चात्वर्ती

अधिनियम, जिसमें उनको सम्मिलित किया गया है, के अभिन्न भाग बन जाते हैं । न्यायमूर्ति श्री जी. पी. सिंह ने कानूनों के निर्वचन पर अपने विद्वत्तापूर्ण कार्य में सम्मिलित किए जाने के द्वारा विधायन को निम्नलिखित उद्धरण में स्पष्ट किया है :–

> "किसी पूर्ववर्ती अधिनियम को किसी पश्चात्वर्ती अधिनियम में समावेशित किया जाना एक विधायी युक्ति है जिसको पूर्ववर्ती के उपबंधों को पश्चात्वर्ती अधिनियम के उपबंधों में शब्दशः प्रत्यायोजित किए जाने से बचने के प्रयोजनार्थ सुविधा की दृष्टि से अंगीकृत किया जाता है । जब कोई पूर्ववर्ती अधिनियम या उसके कतिपय उपबंध किसी पश्चात्वर्ती अधिनियम में समावेशित किए जाते हैं, तो इस प्रकार से समावेशित किए गए उपबंध पश्चात्वर्ती अधिनियम का भाग बन जाते हैं बिल्कुल वैसे ही जैसे कि उनका 'पूर्णरूपेण स्थान बदल दिया गया हो' । सम्मिलित किए जाने के प्रभाव की प्रशंसा करते हुए लार्ड ईशर एम. आर. ने अभिकथित किया है कि 'यदि कोई पश्चात्वर्ती अधिनियम अपने आप में संदर्भ द्वारा किसी पूर्ववर्ती अधिनियम के कुछ खंडों को लाता है, तो उसका विधिक प्रभाव, जैसा कि बहुधा अभिनिर्धारित किया गया है, उन धाराओं को नए अधिनियम में लिखा जाना होगा जैसे कि उनको इस पश्चात्वर्ती अधिनियम में ही वास्तव में कलम द्वारा लिखा गया था या छापा गया था ।' परिणामस्वरूप पश्चात्वर्ती अधिनियम को पूर्ववर्ती अधिनियम में सम्मिलित किए गए उपबंधों के साथ एक स्वतंत्र विधान गठित होगा जिसको किसी पूर्ववर्ती अधिनियम द्वारा उपांतरित या निरसित नहीं किया गया हो जैसे कि स्वतंत्र विधान, जिसको पूर्ववर्ती अधिनियम को उपांतरित या निरसित किए जाने के द्वारा उपांतरित या निरसित नहीं किया गया है । जैसी कि मताभिव्यक्ति न्यायाधीश ब्रेट द्वारा की गई है 'जहां किसी कानून को संदर्भ द्वारा द्वितीय कानून में सम्मिलित कर दिया जाता है, तो तृतीय कानून द्वारा प्रथम कानून का निरसन द्वितीय कानून को प्रभावित नहीं करता ।' इस सीमा तक सर जार्ज लोडेस का कथन है कि 'यह अभिनिर्धारित किया जाना तार्किक प्रतीत होता कि जहां किसी विद्यमान अधिनियम के कतिपय उपबंधों को किसी पश्चात्वर्ती अधिनियम में सम्मिलित कर लिया गया हो तो पश्चात्वर्ती अधिनियम का कोई परिवर्धन जिसको पश्चात्वर्ती अधिनियम पर अभिव्यक्त रूप से लागू नहीं किया गया है, प्रत्येक

परिस्थिति में इसमें सम्मिलित प्रतीत नहीं किया जा सकता है, यदि पश्चात्वर्ती अधिनियम के लिए बिना किसी परिवर्धन के प्रभावी रूप से कार्य करना संभव हों ।"

22. सामान्यतया, एक ही विधान-मंडल जिसने पूर्ववर्ती विधि को अधिनियमित किया, उसके उपबंधों को पश्चात्वर्ती अधिनियम में सम्मिलित कर सकता है । हमारे समक्ष प्रस्तुत मामला एक ऐसा मामला है जहां मूल अधिनियमिति अर्थात् 1965 का उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम राज्य अधिनियमिति है । वह अधिनियमिती जिसको 2005 का सूचना का अधिकार अधिनियम के रूप में अधिनियमित किया गया, संसद् का अधिनियम है । राज्य अधिनियम का संशोधन जिसके द्वारा संसदीय अधिनियमिति को 2013 की पश्चात्वर्ती राज्य अधिनियमिती में सम्मिलित किया गया । यह सुस्थापित है कि समावेशित किए जाने के द्वारा विधि निर्माण वह विधि है जिसके उपबंध सम्मिलित किए गए और नए कानून का अभिन्न भाग बन गया । नए कानून की संवैधानिक विधिमान्यता नए कानून को अधिनियमित करने वाले निकाय की विधायी सक्षमता के संदर्भ में अभिनिर्धारित की जानी है न कि उस विधान-मंडल की सक्षमता के संदर्भ में जिसने मूल कानून अधिनियमित किया । वर्तमान मामले में, राज्य अधिनियम की धारा 113(2) की संवैधानिक विधिमान्यता राज्य विधान-मंडल की विधायी सक्षमता के संदर्भ में निर्णीत की जानी है जिसमें केन्द्रीय अधिनियम के उपबंधों को राज्य अधिनियम में सम्मिलित किया गया । धारा 113(2) की संवैधानिक विधिमान्यता संसद्, जिसने सूचना का अधिकार अधिनियम अधिनियमित किया, की विधायी सक्षमता के संदर्भ में निर्णीत नहीं की जानी है बल्कि इस संदर्भ में कि क्या उत्तर प्रदेश के राज्य विधान-मंडल को धारा 113(2) द्वारा आच्छादित विषय-वस्तु पर विधि अधिनियमित करने की सक्षमता प्राप्त है । यह सिद्धांत सारगर्भित रूप से, न्यायमूर्ति जी. पी. सिंह के कानूनी निर्वचन के सिद्धांत नामक पुस्तक में अभिकथित है, जो इस प्रकार है :–

"चूंकि समावेशित उपबंध कानून के भाग बन जाते हैं, समावेशन द्वारा विधि निर्माण के मामले में किसी कानून की संवैधानिक विधिमान्यता का निर्णय समावेशित उपबंधों को सम्मिलित करते हुए नया कानून अधिनियमित करने वाले विधान-मंडल की शक्तियों के संदर्भ में किया जाता है न कि मूल विधान अधिनियमित करने वाले विधान-मंडल की शक्तियों के संदर्भ में । दोनों कानून भिन्न और

पृथक् बने रहते हैं और दोनों में से प्रत्येक का निर्णय उनके अपने स्रोत के संदर्भ में किया जाता है ....''

23. इस प्रकृति के विवाद्यकों की संवैधानिक विधिमान्यता पर विचार माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष बिक्री कर विधान, जो भाग क राज्यों में प्रवृत्त था और भाग ग राज्यों पर 1950 के भाग ग राज्यों (विधि) अधिनियम द्वारा विस्तारित किया गया था, के संदर्भ में किया जा चुका है । माननीय उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने इस विवाद्यक पर **मिट्ठन लाल** बनाम **दिल्ली राज्य**[1] वाले मामले में विचार किया । भाग क राज्यों के मामले में राज्य विधान-मंडल अभिव्यक्ति "विक्रय" बिक्री कर की कृत्रिम परिभाषा अंगीकृत करते हुए किसी माल के विक्रय के संव्यवहार पर अधिरोपित कर सकता था किन्तु ऐसे संव्यवहार पर कर अधिरोपित करने के लिए सक्षम नहीं था जो वास्तविकता में विक्रय का संव्यवहार न हो । तथापि, भाग ग राज्यों के मामले में संसद् की विधायी शक्ति को किसी विधायी प्रविष्टि द्वारा नियंत्रित नहीं किया गया था । 1950 के भाग ग राज्यों (विधि) अधिनियम, जो संसदीय कानून था, ने केन्द्रीय सरकार को उन कानूनों को विस्तारित करने की शक्ति प्रदान की जो भाग क राज्यों से भाग ग राज्यों तक बिना किसी उपांतरण के प्रवृत्त थे । केन्द्रीय सरकार ने इस शक्ति का प्रयोग करते हुए भाग क राज्यों से भाग ग राज्यों तक प्रवृत्त बिक्री कर विधि निर्माण को विस्तारित कर दिया । भाग क राज्यों में राज्य विधान-मंडल द्वारा अधिनियमित बिक्री कर विधि निर्माण में 'बिक्री' की एक कृत्रिम परिभाषा समाविष्ट थी जो अननुज्ञेय थी । विवाद्यक जो उद्भूत हुआ, यह था कि क्या इस प्रकार का कोई विधि निर्माण जिसको 1950 के भाग ग राज्यों विधि अधिनियमों के अन्तर्गत भाग ग राज्यों तक विस्तारित किया गया था, भाग ग राज्यों पर लागू किए जाने के मामले में उसी प्रकार के शैथिल्य से ग्रसित था । उच्चतम न्यायालय ने नकारात्मक रूप में अभिनिर्धारित किया और अधिकथित किया कि भाग ग राज्यों (विधि अधिनियम) के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचना जारी किए जाने पर, जिसके द्वारा एक ऐसी बिक्री कर विधि को विस्तारित कर दिया गया जो भाग क राज्यों से भाग ग राज्यों तक प्रवृत्त थी, तो उस विधि के उपबंध जिसको विस्तारित किया गया है, स्वयमेव अधिनियम में संदर्भ द्वारा समावेशित हो जाते हैं और इसलिए उसके अन्तर्गत अधिरोपित कोई कर ऐसा कर है जिसको संसद् द्वारा अधिरोपित किया गया है । भाग ग राज्यों

[1] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 682.

के संबंध में विधान अधिनियमित करने की संसद् की शक्ति सर्वांगीण और आत्यंतिक होने के कारण उसके द्वारा भाग ग राज्यों पर विस्तारित विधि को विधिमान्य अभिनिर्धारित किया गया था । इन सिद्धांतों की पुष्टि **नई दिल्ली नगर पालिका परिषद्** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा की गई । उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 1950 के भाग ग राज्यों (विधि) अधिनियम के अन्तर्गत जारी अधिसूचना द्वारा दिल्ली के भाग ग राज्यों के विस्तारित पंजाब नगर पालिका अधिनियम संसदीय अधिनियमित और उसके अन्तर्गत अधिरोपित कर संघ कराधान के अन्तर्गत थे ।

24. यदि कोई राज्य अधिनियम विधायी सक्षमता के कारण शून्य है, तो उसको किसी पश्चात्वर्ती केन्द्रीय अधिनियम में, यदि संसद् को उस मामले पर विधायी सक्षमता प्राप्त है, समावेशित नहीं किया जा सकता । यद्यपि राज्य विधान-मंडल को विधायी सक्षमता प्राप्त न होने के कारण राज्य विधि के रूप में कोई विधान शून्य हो सकता है, फिर भी वह उस केन्द्रीय अधिनियमिति का भाग बन जाएगा जिसमें उसको समावेशित किया गया है और केन्द्रीय अधिनियमिति के भांति विधिमान्यता प्राप्त कर लेगी । **कृष्ण चंद गंगोपाध्याय** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में बिहार राज्य द्वारा विरचित 1964 के बिहार लघु खनिज रियायत नियम के कतिपय उपबंधों को विधिमान्य करने के बाबत संसद् द्वारा अधिनियमित किया गया था जिसको उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय द्वारा अधिकारातीत अभिनिर्धारित कर दिया गया । उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संसद् ने विधिमान्यकरण अधिनियम द्वारा बिहार विधान-मंडल द्वारा पारित विधि को न केवल विधिमान्य कर दिया बल्कि अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए कानून की पुस्तक में एक संशोधनकारी केन्द्रीय अधिनियम संयोजित करते हुए उसको भूतलक्षी प्रभाव के साथ पुनः अधिनियमित भी कर दिया । इसको विधिमान्य अभिनिर्धारित किया गया था । उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यदि संसद् द्वारा अधिनियमित कोई विधिमान्य विधि मात्र किसी अविधिमान्य राज्य विधि को, जो राज्य सूची के बाहर है, विधिमान्य बनाती है तो ऐसा विधिमान्यकरण अधिनियम अविधिमान्य होगा । यह संविधान का कार्य है कि इस प्रकार के राज्य विधान-मंडलों को सक्षमता प्रदान करे न कि संसद् का । किन्तु जहां संसद्

---

[1] (1997) 7 एस. सी. सी. 339 = ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 2847.

[2] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1389 = [1975] एस. सी. आर. 151.

जिसको किसी विषय पर विधि अधिनियमित करने की शक्ति प्राप्त है, ने वास्तव में अपनी विधायी सक्षमता के भीतर विधि निर्माण किया है और प्रारूपण के संकेत के रूप में अपने कानून में संदर्भ द्वारा किसी राज्य कानून के शब्दों को सुविधाजनक आशुलिपिक के रूप में उधार लिया है, तो उस विषय के संबंध में ऐसी विधि का निर्माण संसद् की विधायी शक्ति के अंतर्गत आता है । यह अभिनिर्धारित किया गया कि इस प्रकार का विभेद कभी-कभी उत्तम हो सकता है किन्तु सदैव वास्तविक होता है । वर्तमान मामले में तथ्यात्मक स्थिति बिल्कुल इसके विपरीत है । संसद् द्वारा अधिनियमित सूचना का अधिकार अधिनियम को मामले की विषय-वस्तु के ऊपर विधायी सक्षमता प्राप्त है और सातवीं अनुसूची की संघ सूची की प्रविष्टि 97वें सपठित अनुच्छेद 246 (1) में संदर्भित है । क्या कोई विशिष्ट अस्तित्व केन्द्रीय अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत "लोक प्राधिकारी" है, मात्र उस अधिनियम के उपबंधों के निर्देश में विनिर्धारित किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में राज्य विधान-मंडल ने विधायी नुस्खे द्वारा जो आज्ञा प्रदान की है, यह है कि प्रत्येक सहकारी समिति को सूचना का अधिकार अधिनियम द्वारा आच्छादित किया जाएगा । यह नुस्खा कि प्रत्येक सहकारी समिति आच्छादित होंगी, का यह परिणाम होगा कि इस बात को ध्यान में रखे बिना कि प्रश्नगत सहकारी समिति केन्द्रीय अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत "लोक प्राधिकारी" है या नहीं, राज्य अधिनियम की धारा 113(2) के उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए सूचना का अधिकार अधिनियम द्वारा शासित होगी । यह राज्य विधान-मंडल की सक्षमता के परे होगा । धारा 113(2) के अधीन राज्य विधान-मंडल द्वारा किए गए समावेशित संशोधन की विधिमान्यता का विनिर्धारण राज्य विधान-मंडल की सूचना का अधिकार विषय पर विधि अधिनियमित करने की विधायी सक्षमता के संदर्भ में किया जाना चाहिए । ऐसा करने की राज्य विधान-मंडल की विधायी सक्षमता के अभाव में धारा 113(2) को अधिकारातीत अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए ।

25. उपरोक्त कारणोंवश हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 113(2) के उपबंध असंवैधानिक हैं । राज्य विधान-मंडल को धारा 113(2) के उपबंधों को अधिनियमित करने की विधायी सक्षमता प्राप्त नहीं है ।

भाग IX(ख) – प्रतिरक्षा

26. हम इस निवेदन में कोई सार नहीं पाते हैं कि राज्य विधान-मंडल

द्वारा अधिनियमित विधि संविधान के भाग ix(ख) की परिधि के अन्तर्गत आती है । अनुच्छेद 243(यझ) किसी राज्य के विधान-मंडल को सहकारी समितियों की स्वैच्छिक विरचना, लोकतांत्रिक सदस्य नियंत्रण, सदस्य आर्थिक सहभागिता और प्रशासी कार्य के सिद्धांतों के आधार समावेशन, विनियमन और परिसमापन के संबंध में सशक्त बनाता है । अनुच्छेद 243(यत) उन विवरणियों को उपबंधित करता है जिनको सहकारी समिति द्वारा राज्य सरकार द्वारा पदनामित प्राधिकारी के समक्ष फाइल किया जाना अपेक्षित है । वे मामले जिनके संबंध में विवरणियां फाइल किया जाना अपेक्षित है, मोटे तौर पर अधिनियम की धारा 113(1) के अनुरूप होनी चाहिए । अनुच्छेद 243यथ के उपबंध पर आधारित विद्वान् स्थायी काउंसेलों के निवेदनों में कोई गुणागुण नहीं है । अनुच्छेद 243यथ राज्य विधान-मंडल को सहकारी समितियों के संबंध में अपराधों के लिए उपबंध बनाने और उन अपराधों के बाबत शास्तियां अधिरोपित करने के लिए सशक्त करता है । अनुच्छेद 243यथ निम्नलिखित है :–

> "**अनुच्छेद 243यथ – अपराध और शास्तियां** (1) किसी राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, सहकारी समितियों से संबंधित अपराधों और ऐसे अपराधों के लिए शास्तियों से संबंधित उपबंध कर सकेगा ।
>
> (2) खंड (1) के अधीन किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि में निम्नलिखित कार्य करना या उसका लोप करना अपराध के रूप में सम्मिलित होगा, अर्थात्–
>
> (क) कोई सहकारी समिति या उसका कोई अधिकारी या सदस्य जानबूझकर मिथ्या विवरणी बनाता है या मिथ्या जानकारी देता है अथवा कोई व्यक्ति जानबूझकर ऐसी जानकारी नहीं देता है, जो इस निमित्त राज्य अधिनियम के उपबंधों के अधीन प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा उसके अपेक्षित की गई हो ;
>
> (ख) कोई व्यक्ति जानबूझकर या किसी युक्तियुक्त कारण के बिना राज्य अधिनियम के उपबंधों के अधीन जारी किए गए किसी समन, अध्यपेक्षा या विधिपूर्ण लिखित आदेश की अवज्ञा करता है ;
>
> (ग) कोई नियोजक, जो पर्याप्त कारण के बिना, उसके द्वारा उसके कर्मचारी से काटी गई रकम का, उस तारीख से, जिसको ऐसी कटौती की गई है, चौदह दिन की अवधि के

भीतर सहकारी समिति को संदाय करने में असफल रहता है ;

(घ) ऐसा कोई अधिकारी या अभिरक्षक, जो ऐसी किसी सहकारी समिति की, जिसका वह अधिकारी या अभिरक्षक है, बहियों, लेखाओं, दस्तावेजों, अभिलेखों रोकड़, प्रतिभूति या अन्य संपत्ति की अभिरक्षा किसी प्राधिकृत व्यक्ति को सौंपने में असफल रहता है ; और

(ङ) जो कोई बोर्ड के सदस्यों या पदाधिकारियों के निर्वाचन से पहले उसके दौरान या पश्चात् कोई भ्रष्ट आचरण अपनाता है ।

27. अनुच्छेद 243यथ के खंड (2) का उपखंड (क) ऐसी परिस्थिति पर विचार करता है जहां कोई सहकारी समिति या उसका कोई अधिकारी या सदस्य जानबूझकर कोई असत्य विवरणी तैयार करता है या असत्य सूचना प्रस्तुत करता है या राज्य अधिनियम के उपबंधों के अन्तर्गत प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा उससे अपेक्षित सूचना जानबूझकर प्रस्तुत नहीं करता है । यह विवाद्यक से किसी भी प्रकार से सुसंगत नहीं है जिसको अभिनिर्धारित किया जाना है, चाहे विधान-मंडल को धारा 113(2) अधिनियमित करने के द्वारा किसी ऐसे क्षेत्र में, जो संसद् के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत है, विधान निर्मित करने और केन्द्रीय अधिनियम के लागू होने को राज्य में स्थित समस्त सहकारी समितियों पर विस्तारित करने के लिए इसका अधिकार है या नहीं । निस्संदेह रूप से सहकारी समितियों का विषय सातवीं अनुसूची की राज्य सूची की प्रविष्टि 32 के अन्तर्गत आता है । तथापि, इसमें सूचना का अधिकार सम्मिलित नहीं है । जैसाकि हमने पहले भी निष्कर्ष निकाला है यह विषय सातवीं विषय सूची की संघ सूची की अवशिष्ट प्रविष्टि 97वें से संबंधित है ।

28. इन कारणोंवश हम यह भी अभिनिर्धारित करते हैं कि गौतमबुद्ध नगर के सहायक रजिस्ट्रार (सहकारिता) ने जिले की समस्त सहकारी समितियों से यह अपेक्षा करने के द्वारा कि वे अपने सचिवों को लोक सूचना अधिकारी के रूप में पदनामित करे, अपनी अधिकारिता की सीमाओं का अतिक्रमण किया है । किसी भी दशा में लोक प्राधिकारी के मामले में भी ऐसी कोई भी नियुक्ति संबद्ध प्राधिकारी द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 5 के अधीन की जानी होती है और सहायक रजिस्ट्रार को यह अधिकार नहीं था कि वह ऐसी कोई नियुक्ति करता या उसकी

नियुक्ति के लिए निर्देशित करता ।

निष्कर्ष :

29. परिणामस्वरूप हम यह अभिनिर्धारित करते हुए इस रिट याचिका को मंजूर करते हैं कि 1965 के उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम की धारा 113(2) के उपबंध अधिकारातीत हैं और राज्य विधान-मंडल को इस कानून को अधिनियमित करने की विधायी सक्षमता प्राप्त नहीं थी । हम गौतमबुद्ध नगर के सहायक आयुक्त और सहायक रजिस्ट्रार (सहकारिता) द्वारा जारी किए गए तारीख 20 नवम्बर, 2013 के कार्यालय ज्ञापन को भी अभिखंडित करते हैं ।

30. तथापि, हम अभिव्यक्त रूप से स्पष्ट करते हैं कि यह विवाद्यक कि क्या प्रथम याची 2005 के सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2(ज) के अर्थान्तर्गत "लोक प्राधिकारी" है, राज्य सूचना आयुक्त द्वारा उन आक्षेपों को ध्यान में रखते हुए निर्णीत किया जाएगा, जिनको याचियों द्वारा चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित कार्यवाहियों की पोषणीयता के संबंध में उठाया गया है । इसी प्रकार से वह प्रकटीकरण जिसकी ईप्सा चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा सहकारी सोसाइटियों के रजिस्ट्रार से की गई है, ऐसा मामला है जिसका विनिर्धारण राज्य सूचना आयोग द्वारा किया जाएगा । उस विवाद्यक के साथ यह प्रश्न कि क्या सूचना, जिसके प्रकटीकरण की ईप्सा की गई, का कोई भाग सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 8 के अधीन अपवादों के अन्तर्गत आता है, को राज्य सूचना आयोग द्वारा संबोधित और निर्णीत किए जाने के लिए छोड़ा जाता है ।

31. तद्नुसार रिट याचिका पूर्वोक्त निबंधनों के अनुसार निस्तारित की जाती है । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा है ।

रिट याचिका का निपटारा किया गया ।

शु.

———————

सैकेट डे

बनाम

दुखी राम पाल

तारीख 1 जुलाई, 2015

न्यायमूर्ति ज्योतिर्मय भट्टाचार्य और न्यायमूर्ति देबी प्रोसाद डे

भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का 9) – धारा 69 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 7, नियम 11(घ)] – भागीदारी फर्म के रजिस्ट्रीकृत न होने का प्रभाव – किसी भागीदार फर्म के भागीदार द्वारा अन्य भागीदारों के विरुद्ध किसी संविदा से उद्भूत अधिकार को परिवर्तित कराए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए वाद को पोषणीय बनाए जाने और भागीदार फर्म का रजिस्ट्रीकृत होना एक पूर्व शर्त होती है ।

संक्षेप में वाद के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी-वादी ने अमर प्योर आयल मिल नामक भागीदारी फर्म के नाम से कार्यरत फर्म के साझेदार के हैसियत से अन्य भागीदारों के विरुद्ध वाद में अन्तर्वलित संपत्ति के संबंध में अपने अधिकार, हक और हित की घोषणा के अनुतोष की ईप्सा करते हुए वाद फाइल किया । प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन एक आवेदन इस आधार पर प्रस्तुत किया कि वाद 1932 के भागीदारी अधिनियम की धारा 69(2) के उपबंधों से वर्जित है चूंकि भागीदारी फर्म रजिस्ट्रीकृत नहीं है अतः वादपत्र को अस्वीकृत कर दिया जाए और वादी को वापस लौटा दिया जाए । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए वादपत्र को अस्वीकृत कर दिया कि वाद 1932 के भागीदारी अधिनियम की धारा 69(2) के उपबंधों के अधीन वर्जित है । अपीलार्थी-वादी ने वादपत्र को अस्वीकृत करने वाले उक्त आक्षेपित आदेश की वैधता को इस प्रथम प्रकीर्ण अपील में चुनौती दी है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – हम अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता की इस दलील में सार पाते हैं किन्तु, साथ ही अभिनिर्धारित करते हैं कि वाद भागीदारी अधिनियम

की धारा 69(1) के उपबंधों के अधीन वर्जित है चूंकि किसी भागीदारी फर्म और/या उसके अन्य भागीदारों के विरुद्ध किसी भागीदार द्वारा वाद को पोषणीय बनाए जाने और किसी संविदा से उद्‌भूत अधिकार को प्रवर्तित कराए जाने के प्रयोजनार्थ भागीदारी फर्म का रजिस्ट्रीकरण एक पूर्व शर्त होती है । इसलिए, हम आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि वाद भागीदारी अधिनियम की धारा 69(1) के उपबंधों के अधीन वर्जित है, में कोई अवैधता नहीं पाते । हमारी सुविचारित राय में, विद्वान् विचारण न्यायाधीश वादपत्र को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11(घ) के उपबंधों के अधीन अस्वीकृत करने में पूर्णतया न्यायानुमत था । अतः, हम आक्षेपित आदेश में मध्यक्षेप करने का कोई न्यायौचित्य नहीं पाते । (पैरा 7, 8 , 9 और 10)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की प्रथम प्रकीर्ण अपील सं. 582 (2015 की सिविल अपील सं. 5520).

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री अमृतिम मंडल और सुधीर रंजन घोष

प्रत्यर्थी की ओर से कोई नहीं

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ज्योतिर्मय भट्‌टाचार्य ने दिया ।

न्या. भट्‌टाचार्य – अपीलार्थी के विद्वान् अभिलेख अधिवक्ता को उन त्रुटियों का निवारण करने की इजाजत प्रदान की गई जिनको स्टांप रिपोर्टर द्वारा अधिसूचित किया गया था ।

2. वादी ने भागीदारी फर्म, जो "अमर प्योर आयल मिल" के नाम से कारबार कर रही है, का भागीदार होने के नाते अपने अन्य भागीदारों के विरुद्ध वादगत संपत्ति के संबंध में अपने आत्यंतिक अधिकार, हक और हित की घोषणा के अनुतोष की प्रार्थना करते हुए वाद फाइल किया । उसने दावा किया कि वह उक्त भागीदारी फर्म का प्रबंध भागीदार है जबकि अन्य भागीदार निष्क्रिय भागीदार हैं ।

3. प्रतिवादियों ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन इस आधार पर वादपत्र को अस्वीकृत किए जाने के लिए आवेदन फाइल किया कि वाद 1932 के भागीदारी अधिनियम की धारा 69(2) के उपबंधों के अधीन वर्जित है चूंकि भागीदारी फर्म रजिस्ट्रीकृत फर्म नहीं है । वास्तविकता यह है कि वादपत्र को भागीदारी अधिनियम की धारा 69(2) के उपबंधों के अनुसार अस्वीकृत किए जाने की प्रार्थना की गई थी ।

4. विद्वान् विचारण न्यायालय ने वादपत्र को आक्षेपित आदेश द्वारा अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित करते हुए, अस्वीकृत कर दिया कि वाद 1932 के भागीदारी अधिनियम की धारा 69(2) के उपबंधों के अधीन वर्जित है ।

5. वादी द्वारा वादपत्र को अस्वीकृत करने वाले उक्त आदेश की वैधता को इस प्रथम प्रकीर्ण अपील में चुनौती दी गई है ।

6. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि 1932 के भागीदारी अधिनियम की धारा 69(2) हमारे समक्ष उपस्थित मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होती चूंकि यह वाद भागीदार द्वारा तृतीय पक्ष के विरुद्ध किसी संविदा से उद्भूत अधिकार को प्रवर्तित कराए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल नहीं किया गया है । उन्होंने आगे दलील दी कि चूंकि यह वाद किसी भागीदार द्वारा अपने दावे को किसी तृतीय पक्ष के विरुद्ध प्रवर्तित कराए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल नहीं किया गया है, भागीदारी अधिनियम की धारा 69(2) लागू नहीं होती और इस प्रकार भागीदारी फर्म का रजिस्ट्रीकृत न होना वादी द्वारा फाइल किए गए उक्त वाद की पोषणीयता को प्रभावित नहीं करता ।

7. हम अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता की इस दलील में सार पाते हैं किन्तु, साथ ही अभिनिर्धारित करते हैं कि वाद भागीदारी अधिनियम की धारा 69(1) के उपबंधों के अधीन वर्जित है चूंकि किसी भागीदारी फर्म और/या उसके अन्य भागीदारों के विरुद्ध किसी भागीदार द्वारा वाद को पोषणीय बनाए जाने और किसी संविदा से उद्भूत अधिकार को प्रवर्तित कराए जाने के प्रयोजनार्थ भागीदारी फर्म का रजिस्ट्रीकरण एक पूर्व शर्त होती है ।

8. इसलिए, हम आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा विद्वान् विचारण

न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि वाद भागीदारी अधिनियम की धारा 69(1) के उपबंधों के अधीन वर्जित है, में कोई अवैधता नहीं पाते ।

9. हमारी सुविचारित राय में, विद्वान् विचारण न्यायाधीश वादपत्र को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11(घ) के उपबंधों के अधीन अस्वीकृत करने में पूर्णतया न्यायानुमत था ।

10. अतः, हम आक्षेपित आदेश में मध्यक्षेप करने का कोई न्यायौचित्य नहीं पाते ।

11. तद्नुसार, हम इस अपील को ग्रहण करने से इनकार करते हैं ।

12. तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि यह आदेश वादी को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 13 में समाविष्ट उपबंधों के निबंधनों के अनुसार परिसीमा अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, नया वादपत्र प्रस्तुत करने से प्रवारित नहीं करेगा ।

13. अतः, अपील खारिज की जाती है ।

14. चूंकि अपील ऊपर वर्णित तरीके में निस्तारित की गई है, इस आवेदन पर कोई अग्रिम आदेश पारित किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

15. 2015 की सिविल अपील सं. 5520 को भी निस्तारित प्रतीत किया जाएगा ।

16. मैं, सहमत हूं ।

अपील खारिज की गई ।

शु.

सुकूर अली

बनाम

जरीना बीबी

तारीख 2 अप्रैल, 2015

न्यायमूर्ति ए. के. गोस्वामी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित मुस्लिम स्वीय (शरियत) विधि, 1937 की धारा 149] – मौखिक दान – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह साबित नहीं होता कि कब्जे का परिदान किया गया, चूंकि मौखिक दान के प्रमुख तीन तत्वों में कब्जे का परिदान एक प्रमुख तत्व है और इस मामले में कब्जे का परिदान नहीं किया गया, अतः मौखिक दान विधिमान्य नहीं है ।

वाद फाइल किया गया जिसमें इस संबंध में डिक्री पारित किए जाने की प्रार्थना की गई कि वादान्तर्गत भूमि पर वादियों के अधिकार, हक और हित की घोषणा दान के आधार पर की जाए और प्रतिवादी के नाम में किए गए स्थानांतरण को रद्द करते हुए अभिलेख में, यदि कोई हो, संशोधन किया जाए और प्रतिवादी को बेदखल करते हुए कब्जा दिलाया जाए और वादान्तर्गत भूमि पर अवैध कब्जा रखने पर, 100/- रुपए प्रतिदिन की दर से प्रतिकर दिए जाने की डिक्री पारित की जाए । प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन फाइल किया गया जिसमें सामान्य अभिवाक् किया गया अर्थात् वाद चलने योग्य नहीं है, वाद अधित्यजन और उपमति के कारण वर्जित है, परिसीमा से वर्जित है तथा वाद कारण आदि से भी वर्जित है । वाद में किए गए अभिकथनों से इनकार किया गया है । यह कथन किया गया है कि वादी सं. 1 गुलबन बीबी के घर में काम करने वाली नौकरानी है और वादान्तर्गत भूमि वादियों को दान में नहीं दी जा सकती और उनके पास भूमि का कब्जा भी नहीं है । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी मौखिक रूप से दिए गए दान को साबित करने में असफल रहा है जैसाकि वाद में अभिवाक् किया गया है, तद्नुसार, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वादियों को वादान्तर्गत भूमि पर कोई भी अधिकार, हक और हित नहीं हैं । विवाद्यक सं. 2 से संबंधित ऊपर उल्लिखित निष्कर्ष को

दृष्टिगत करते हुए वाद खारिज कर दिया गया । केवल वादी सं. 1 ने विद्वान् विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल की है । विद्वान् अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अपील मंजूर की कि दिया गया दान मुस्लिम विधि के अधीन विधिमान्य है । यह अपील तारीख 4 सितंबर, 2009 को दिए गए आदेश द्वारा विधि के सारभूत निम्न प्रश्न के आधार पर स्वीकार की गई कि क्या वादी मुस्लिम विधि की धारा 149 के अर्थान्तर्गत विधिमान्य मौखक दान गठित करने के लिए आवश्यक तीन शर्तों को साबित कर सका है ? उच्च न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – मुल्ला द्वारा लिखित पुस्तक "मुस्लिम ला" के खंड 149 में दान के तीन अवयव हैं । यह उपबंध किया गया है कि दान की विधिमान्यता के लिए तीन बातें आवश्यक हैं – (i) दाता द्वारा दान की घोषणा किया जाना, (ii) स्पष्ट या विवक्षित रूप से अदाता द्वारा या उसकी ओर से दान स्वीकार किया जाना और (iii) दाता द्वारा अदाता को दान में दी जाने वाली वस्तु के कब्जे का परिदान किया जाना जैसाकि खंड 150 में उल्लिखित है । यदि उन शर्तों का अनुपालन किया जाए तो ऐसी वस्तु को पूर्णरूप से दान कहा जा सकता है । मुल्ला द्वारा लिखित पुस्तक "मुस्लिम ला" के खंड 150 के अधीन सबसे महत्वपूर्ण उपबंध यह किया गया है कि दान की विधिमान्यता के लिए यह आवश्यक है कि दान में दी जाने वाली वस्तु के कब्जे का परिदान किया जाना चाहिए । अदाता द्वारा वास्तविक रूप से या आन्वयिक रूप से दान की विषयवस्तु का कब्जा लिया जाना दान पूरा करने के लिए आवश्यक है । मुल्ला द्वारा लिखित पुस्तक "मुस्लिम ला" के खंड 152 स्थावर संपत्ति के कब्जे का परिदान किए जाने के बारे में है (i) ऐसी स्थिति जब दाता के पास संपत्ति का कब्जा हो, (ii) जब संपत्ति किराएदार के अधिभोग में हो और (iii) जब दाता तथा अदाता दोनों उसी संपत्ति में रहते हों । उपर्युक्त खंड 152 के अधीन स्थावर संपत्ति का दान, जिसका वास्तविक कब्जा दाता के पास है, तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि अदाता भौतिक रूप से अपने परिसर से संपूर्ण जंगम संपत्ति से प्रस्थान न कर ले और अदाता औपचारिक रूप से उस परिसर का कब्जा न ले ले । स्थावर संपत्ति का दान, जो किराएदार के अधिभोग में है, तब पूरा हो सकता है जब दाता द्वारा किराएदार से यह निवेदन कर दिया जाए कि वह अदाता को स्वामी मान ले या हक-विलेख द्वारा परिदान किया जाए या राजस्व रजिस्टर में स्थानांतरण कर दिया जाए । ऐसे मामले में

जहां दाता और अदाता दान के समय एक ही स्थावर संपत्ति में रहते हों, वहां भौतिक रूप से दाता का प्रस्थान करना या अदाता का उस संपत्ति में प्रवेश करना आवश्यक नहीं है और ऐसी स्थिति में दाता द्वारा कोई भी स्पष्ट कार्य किए जाने से, अर्थात् ऐसा कार्य जिससे दाता का, संपत्ति का कब्जा स्थानांतरित करने का आशय उपदर्शित होता हो तथा दान की विषयवस्तु पर दाता का कोई भी नियंत्रण न रहे तब दान पूर्ण हो सकता है । अपील न्यायालय ने पहले ही यह मान लिया था कि चूंकि दाता और अदाता एक संयुक्त मकान में रहते थे, इसलिए संपत्ति के कब्जे का प्रतीकात्मक परिदान, दान को विधिमान्य बनाने के लिए पर्याप्त है । यह उल्लेखनीय है कि यह सिद्धांत ऐसी स्थावर संपत्ति के दान को लागू होगा जिसमें दाता और अदाता दोनों ही एक ही संपत्ति में दान किए जाने के समय रहते हों । यह उपधारणा करने पर भी कि दाता और अदाता एक साथ रहते थे, वह संपत्ति दान की विषयवस्तु नहीं हो सकती जिसमें वे एक साथ रहते थे और इसीलिए, उपर्युक्त सिद्धांत लागू नहीं होगा । वाद में यह वृत्तांत किया गया था कि प्रतिवादी "अधिमर" है अर्थात् वह एक प्रकार से किराएदार है । ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि प्रतिवादी से ऐसा कोई निवेदन किया गया था कि वह अदाता को स्वामी बनाए या यह कि हक-विलेख का परिदान अदाता को किया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय के आदेश में, वादी साक्षी-1 के साक्ष्य को निर्दिष्ट करते हुए यह अभिलिखित किया गया है, "हमारे पास वादांतर्गत भूमि का कब्जा है .... सुकूर अली के पास संपूर्ण वादांतर्गत भूमि है ।" प्रथम भाग ठीक प्रकार उद्धृत नहीं किया गया है क्योंकि वादी साक्षी-1 द्वारा प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया गया था कि "हमारे पास वादांतर्गत भूमि का कब्जा कभी भी नहीं था ।" दान मौखिक रूप से कब किया गया था या अभिकथित परिदान कब किया गया था, उसका न तो अभिवाक् किया गया है और न ही ऐसा कोई अभिसाक्ष्य दिया गया है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने, अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का परिशीलन करते हुए, सही प्रकार निर्धारण किया है कि वादियों को वादांतर्गत भूमि के कब्जे का परिदान कभी भी नहीं किया गया था । इस प्रकार, मौखिक दान के अवयवों में एक अवयव कब्जे का परिदान है जिसका वर्तमान मामले में लोप किया गया है । कब्जे का प्रतीकात्मक परिदान करने का सिद्धांत, जिस पर अपील न्यायालय का आक्षेपित निर्णय आधारित है, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में चलने योग्य नहीं है । (पैरा 16, 17, 18, 19 और 25)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2014] (2014) 10 एस. सी. सी. 459 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. (सिविल) 226 : **रशीदा खातून (मृतक) द्वारा विधिक-वारिस** बनाम **आशिक अली पुत्र स्वर्गीय अबू मोहम्मद (मृतक) द्वारा विधिक-वारिस** ; 13, 22

[2011] (2011) 5 एस. सी. सी. 654 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1695 : **हफीजा बीबी** बनाम **शेख फरीद** ; 21

[1960] ए. आई. आर. 1960 इलाहाबाद 351 : **करम इलाही** बनाम **शर्फुद्दीन** ; 15

[1927] ए. आई. आर. 1927 कलकत्ता 197 : **नसीब अली** बनाम **वाजिद अली** । 20

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की द्वितीय नियमित अपील सं. 51.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री बी. सिन्हा

प्रत्यर्थी की ओर से कोई नहीं

न्यायमूर्ति ए. के. गोस्वामी – यह द्वितीय अपील विद्वान् सिविल न्यायाधीश द्वारा तारीख 17 दिसंबर, 2008 को अपील सं. 18/2006 में पारित किए गए उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है जिसके द्वारा विद्वान् मुन्सिफ न्यायालय सं. 1, ढूबरी द्वारा तारीख 21 जनवरी, 2006 को वाद सं. 287/2003 में पारित किए गए निर्णय और डिक्री को आरक्षित रखा गया ।

2. पैरा 2 में अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री बी. सिन्हा को सुना है । प्रत्यर्थी की ओर से कोई भी प्रस्तुत नहीं हुआ है ।

3. अपीलार्थी प्रतिवादी था । प्रतिवादी-अपीलार्थी गुलबन बीबी के भाई का पुत्र है जिसने, वादी के अनुसार, उनको मौखिक रूप से दान किया ।

4. प्रत्यर्थी ने जाहर अली के साथ एक वाद फाइल किया जिसमें उसने अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन किया कि गुलबन बीबी के पास 6 बीघा और 4 कट्ठा और 18 लेचा भूमि है जिसका उल्लेख वाद की अनुसूची में पट्टा सं. 65 और 66 में किया गया है जो जिला ढूबरी के रंगपाणि भाग-2 के अंतर्गत आती है । गुलबन बीबी और उसके पति अकबर अली के कोई संतान नहीं थी और उन्होंने वादियों का पालन-पोषण पुत्री और पुत्र के रूप में उनके बचपन से ही किया और जब वे वयस्क हो गए, उन्होंने एक-दूसरे के साथ विवाह कर लिया । वादियों ने उनकी देख-रेख उनकी मृत्यु होने तक अपने माता-पिता के रूप में की जो एक ही घर में रहते और खाते-पीते थे । अकबर अली की मृत्यु गुलबन बीबी की मृत्यु के पूर्व हो गई थी । यह अभिवाक् किया गया है कि अनुसूचित भूमि उन्हें गुलबन बीबी द्वारा बराबर-बराबर भाग में दान के रूप में दी गई थी और उस भूमि का कब्जा भी उन्हें दे दिया गया था । प्रतिवादी, स्वर्गीय गुलबन बीबी का वारिस नहीं है और इस प्रकार वह भूमि में हिस्सा पाने का हकदार नहीं है और यह कि वादान्तर्गत भूमि में वह केवल एक अधियार है । वादियों ने स्थानांतरण के लिए याचिका फाइल की और वह याचिका प्रतिवादी द्वारा किए गए आक्षेप के आधार पर तारीख 2 जून, 2003 को खारिज कर दी गई ।

5. तद्नुसार, वाद फाइल किया गया जिसमें इस संबंध में डिक्री पारित किए जाने की प्रार्थना की गई कि वादान्तर्गत भूमि पर वादियों के अधिकार, हक और हित की घोषणा दान के आधार पर की जाए और प्रतिवादी के नाम में किए गए स्थानांतरण को रद्द करते हुए अभिलेख में, यदि कोई हो, संशोधन किया जाए और प्रतिवादी को बेदखल करते हुए कब्जा दिलाया जाए और वादान्तर्गत भूमि पर अवैध कब्जा रखने पर, 100/- रुपए प्रतिदिन की दर से प्रतिकर दिए जाने की डिक्री पारित की जाए ।

6. प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन फाइल किया गया जिसमें सामान्य अभिवाक् किया गया अर्थात् वाद चलने योग्य नहीं है, वाद अधित्यजन और उपमति के कारण वर्जित है, परिसीमा से वर्जित है तथा वाद कारण आदि से भी वर्जित है । वाद में किए गए अभिकथनों से इनकार किया गया है । यह कथन किया गया है कि वादी सं. 1 गुलबन बीबी के घर में काम करने वाली नौकरानी है और वादान्तर्गत भूमि वादियों को दान में नहीं दी जा सकती और उनके पास भूमि का कब्जा भी नहीं है ।

7. इन अभिवाकों के आधार पर, विद्वान् विचारण न्यायालय ने निम्न विवाद्यक विरचित किए :–

"1. क्या इस वाद का कोई वाद कारण है ?

2. क्या वादी को वादान्तर्गत भूमि पर अधिकार, हक और हित है ?

3. क्या यह वाद चलने योग्य है ?

4. क्या वादी मांगे गए अनुतोष को पाने का हकदार है ?"

8. वादी ने पांच साक्षियों का साक्ष्य प्रस्तुत किया है जबकि प्रतिवादियों ने कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है किन्तु उन्होंने वादी की ओर से परीक्षा कराए गए साक्षियों की प्रतिपरीक्षा कराई है ।

9. अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी मौखिक रूप से दिए गए दान को साबित करने में असफल रहा है जैसाकि वाद में अभिवाक् किया गया है, तद्नुसार, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वादियों को वादान्तर्गत भूमि पर कोई भी अधिकार, हक और हित नहीं हैं । विवाद्यक सं. 2 से संबंधित ऊपर उल्लिखित निष्कर्ष को दृष्टिगत करते हुए वाद खारिज कर दिया गया ।

10. केवल वादी सं. 1 ने विद्वान् विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल की है ।

11. विद्वान् अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अपील मंजूर की कि दिया गया दान मुस्लिम विधि के अधीन विधिमान्य है ।

12. यह अपील तारीख 4 सितंबर, 2009 को दिए गए आदेश द्वारा विधि के सारभूत निम्न प्रश्न के आधार पर स्वीकार की गई :–

1. क्या वादी मुस्लिम विधि की धारा 149 के अर्थान्तर्गत विधिमान्य मौखिक दान गठित करने के लिए आवश्यक तीन शर्तों को साबित कर सका है ?

13. श्री सिन्हा ने यह निवेदन किया है कि वादी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि विधिमान्य रूप से कोई मौखिक दान दिया गया था । मौखिक दान देने की बात कब कही गई थी और यह दान तथाकथित रूप से कब दिया गया था, इस संबंध में कोई भी अभिवाक् तथा साक्ष्य उपलब्ध नहीं है । मुल्ला द्वारा लिखित मुस्लिम विधि के खंड 20वें संस्करण के

खंड 149 का अवलंब लेते हुए उन्होंने दलील दी है कि मुस्लिम विधि के अन्तर्गत मौखिक रूप से दान दिए जाने की विधिमान्यता मुख्य अवयव कब्जे का सौंपा जाना है । काउंसेल द्वारा यह निवेदन किया गया है कि विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने अभिनिर्धारित करने में विधि की स्पष्ट रूप से गलती की है कि मौखिक रूप से दिया गया दान विधिमान्य है क्योंकि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रतीकात्मक रूप से दिया गया कब्जा पर्याप्त है कि दाता और ग्राही एक ही जगह पर रहते थे इसलिए यह तथ्य महत्वपूर्ण नहीं रह जाता है कि दान में दी गई संपत्ति उस स्थान पर नहीं थी जहां यह वादी और दाता संयुक्त परिवार में रहते थे । काउंसेल ने यह दलील दी है कि वादी सं. 2 ने यह भी अभिसाक्ष्य नहीं दिया है कि उसके पक्ष में कोई दान दिया गया था । काउंसेल ने **रशीदा खातून (मृतक) द्वारा विधिक-वारिस** बनाम **आशिक अली पुत्र स्वर्गीय अबू मोहम्मद (मृतक) द्वारा विधिक-वारिस**[1] वाले मामले में किए गए उच्चतम न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है ।

14. इस प्रक्रम पर, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 जिसे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है की धारा 123 और धारा 129 को निर्दिष्ट करना समुचित होगा । अधिनियम की धारा 123 के अधीन यह अनुध्यात किया गया है कि स्थावर संपत्ति को दान के प्रयोजन के लिए वह अंतरण दाता द्वारा या उसकी ओर से हस्ताक्षरित और कम से कम दो साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा करना होगा । उस अधिनियम की धारा 129 के अधीन "आसन्नमरण दान और मुस्लिम विधि की व्यावृत्ति" शीर्षक, जिसका उल्लेख अध्याय-7 में किया गया है, के अधीन यह उपबंध किया गया है कि इस अध्याय की किसी भी बात का संबंध जंगम संपत्ति के उन दानों से नहीं है जो मृत्यु को आसन्न मानकर किए गए हैं और न वह मुस्लिम विधि के किसी नियम पर प्रभाव डालने वाली समझी जाएगी । इस प्रकार, मुस्लिम विधि के प्रयोजन के लिए अधिनियम में यथा अंतर्विष्ट दानों से संबंधित उपबंध लागू नहीं होंगे ।

15. **करम इलाही** बनाम **शर्फुद्दीन**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अधिनियम की धारा 123 के उपबंध मुसलमानों द्वारा किए गए दान को लागू नहीं होंगे और वे उनकी अपनी विधि के अनुसार

---

[1] (2014) 10 एस. सी. सी. 459 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. (सिविल) 226.

[2] ए. आई. आर. 1960 इलाहाबाद 351.

ही विधिमान्य होंगे । यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि विधान-मंडल ने धारा 123 के उपबंधों को, धारा 129 को अधिनियमित करते समय, ध्यान में रखा था ।

16. मुल्ला द्वारा लिखित पुस्तक "मुस्लिम ला" के खंड 149 में दान के तीन अवयव हैं । यह उपबंध किया गया है कि दान की विधिमान्यता के लिए तीन बातें आवश्यक हैं – (i) दाता द्वारा दान की घोषणा किया जाना, (ii) स्पष्ट या विवक्षित रूप से अदाता द्वारा या उसकी ओर से दान स्वीकार किया जाना और (iii) दाता द्वारा अदाता को दान में दी जाने वाली वस्तु के कब्जे का परिदान किया जाना जैसाकि खंड 150 में उल्लिखित है । यदि उन शर्तों का अनुपालन किया जाए तो ऐसी वस्तु को पूर्णरूप से दान कहा जा सकता है ।

17. मुल्ला द्वारा लिखित पुस्तक "मुस्लिम ला" के खंड 150 के अधीन सबसे महत्वपूर्ण उपबंध यह किया गया है कि दान की विधिमान्यता के लिए यह आवश्यक है कि दान में दी जाने वाली वस्तु के कब्जे का परिदान किया जाना चाहिए । अदाता द्वारा वास्तविक रूप से या आन्वयिक रूप से दान की विषयवस्तु का कब्जा लिया जाना दान पूरा करने के लिए आवश्यक है ।

18. मुल्ला द्वारा लिखित पुस्तक "मुस्लिम ला" के खंड 152 स्थावर संपत्ति के कब्जे का परिदान किए जाने के बारे में है (i) ऐसी स्थिति जब दाता के पास संपत्ति का कब्जा हो, (ii) जब संपत्ति किराएदार के अधिभोग में हो और (iii) जब दाता तथा अदाता दोनों उसी संपत्ति में रहते हों ।

19. उपर्युक्त खंड 152 के अधीन स्थावर संपत्ति का दान, जिसका वास्तविक कब्जा दाता के पास है, तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि अदाता भौतिक रूप से अपने परिसर से संपूर्ण जंगम संपत्ति से प्रस्थान न कर ले और अदाता औपचारिक रूप से उस परिसर का कब्जा न ले ले । स्थावर संपत्ति का दान, जो किराएदार के अधिभोग में है, तब पूरा हो सकता है जब दाता द्वारा किराएदार से यह निवेदन कर दिया जाए कि वह अदाता को स्वामी मान ले या हक-विलेख द्वारा परिदान किया जाए या राजस्व रजिस्टर में स्थानांतरण कर दिया जाए । ऐसे मामले में जहां दाता और अदाता दान के समय एक ही स्थावर संपत्ति में रहते हों, वहां भौतिक रूप से दाता का प्रस्थान करना या अदाता का उस संपत्ति में प्रवेश करना आवश्यक नहीं है और ऐसी स्थिति में दाता द्वारा कोई भी स्पष्ट कार्य किए

जाने से, अर्थात् ऐसा कार्य जिससे दाता का, संपत्ति का कब्जा स्थानांतरित करने का आशय उपदर्शित होता हो तथा दान की विषयवस्तु पर दाता का कोई भी नियंत्रण न रहे तब दान पूर्ण हो सकता है ।

20. **नसीब अली** बनाम **वाजिद अली**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि मुस्लिम विधि के अधीन दान के अवयवों की घोषणा दाता द्वारा "हिबा" (दान) के रूप में की जाती है जिसे अदाता द्वारा स्पष्ट या विवक्षित रूप में स्वीकार किया जाता है और उस संपत्ति के कब्जे का परिदान जो दान की विषयवस्तु है उसकी अपनी प्रकृति के अनुसार किया जाना चाहिए ।

21. **हफीजा बीबी** बनाम **शेख फरीद**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

> "26. मुस्लिम विधि के अधीन दान को विधिमान्य ठहराने के लिए तीन आवश्यक अवयव हैं – (1) दाता द्वारा दान किए जाने की घोषणा, (2) अदाता द्वारा स्पष्ट या विवक्षित रूप से दान का स्वीकार किया जाना और (3) दान के कब्जे का परिदान किया जाना तथा अदाता द्वारा उसके कब्जे का वास्तविक या आन्वयिक रूप से प्राप्त किया जाना । ऐसे मामले में किसी भी लिखित दस्तावेज की आवश्यकता नहीं है । संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 129 मुस्लिम विधि के नियम को, धारा 123 के दृष्टिकोण से अपवर्जित करती है जिसके अधीन यह आज्ञापक है कि स्थावर संपत्ति का दान रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा किया जाना चाहिए जैसाकि इसमें उल्लिखित है । किंतु इसे सभी मामलों में अनिवार्य नहीं माना जा सकता अर्थात् जब किसी मामले में स्थावर संपत्ति को मुस्लिम दान के रूप में दिए जाने के संबंध में लिखित मौजूद हो, तब उसका रजिस्ट्रीकरण किया जाना चाहिए । लिखित का रजिस्ट्रीकरण आवश्यक है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होता है ।"

22. **रशीदा खातून**[3] वाले मामले के पैरा 17 में उच्चतम न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

---

[1] ए. आई. आर. 1927 कलकत्ता 197.

[2] (2011) 5 एस. सी. सी. 654 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1695.

[3] (2014) 10 एस. सी. सी. 459 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. (सिविल) 226.

"17. ..... यह विवेचनीय है कि मुस्लिम विधि के अधीन दान एक मौखिक दान हो सकता है और उसे रजिस्ट्रीकृत करने की आवश्यकता नहीं है ; किसी भी परिस्थिति में लिखित दस्तावेज को रजिस्ट्रीकृत कराने की आवश्यकता नहीं है ; मुस्लिम विधि के अधीन दान को विधिमान्य बनाने के लिए तीन आवश्यक अवयव हैं अर्थात् (i) दाता द्वारा दान की घोषणा किया जाना, (ii) अदाता द्वारा स्पष्ट या विवक्षित रूप से दान का स्वीकार किया जाना, और (iii) अदाता को कब्जे का परिदान स्पष्ट या आन्वयिक रूप से किया जाना, इन अवयवों का समाधान किया जाना चाहिए ; जिसका मात्र यह कारण है कि लिखत दान-विलेख के बनाए जाने के समय समकालिक होती है इसलिए रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 के अधीन रजिस्ट्रीकरण कराना आवश्यक नहीं है ।"

23. तैयब जी द्वारा लिखित "मुस्लिम ला" नामक पुस्तक में "कब्जा" शब्द निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"कोई व्यक्ति किसी वस्तु या स्थावर संपत्ति का कब्जा रखने वाला तब कहा जाता है जब वह ऐसी स्थिति में हो कि उसका उस संपत्ति पर, उस संपत्ति से ऐसा लाभ लेने के प्रयोजन से एकमात्र नियंत्रण हो जिसे पाने के लिए वह सक्षम हो या जो लाभ आमतौर पर लिया जाता है ।"

24. विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अपील मंजूर की :–

"इसके अतिरिक्त दान के कब्जे का परिदान वास्तविक या आन्वयिक हो सकता है ; जब कब्जे का परिदान भौतिक रूप से किया जाना संभव न हो, तब उसका परिदान जिस प्रकार भी संभव हो, किया जा सकता है । दाता को संपत्ति पर बने अपने कब्जे से दूर हो जाना चाहिए ताकि दान पूर्ण हो सके । वर्तमान मामले में, दाता और अदाता संयुक्त मकान में रहते थे और ऐसे मामले में संपत्ति के कब्जे का प्रतीकात्मक परिदान, दान को विधिमान्य बनाने के लिए पर्याप्त है और ऐसे प्रत्येक मामले में स्थावर संपत्ति का दान करने के लिए कोई भी भौतिक प्रस्थान या औपचारिक प्रविष्टि आवश्यक नहीं है जहां अदाता को कब्जा स्थानांतरित किए जाने के स्पष्ट आशय हो । अतः, मेरा यह मत है कि मुस्लिम विधि के अधीन दान विधिमान्य है ।"

25. अपील न्यायालय ने पहले ही यह मान लिया था कि चूंकि दाता और अदाता एक संयुक्त मकान में रहते थे, इसलिए संपत्ति के कब्जे का प्रतीकात्मक परिदान, दान को विधिमान्य बनाने के लिए पर्याप्त है । यह उल्लेखनीय है कि यह सिद्धांत ऐसी स्थावर संपत्ति के दान को लागू होगा जिसमें दाता और अदाता दोनों ही एक ही संपत्ति में दान किए जाने के समय रहते हों । यह उपधारणा करने पर भी कि दाता और अदाता एक साथ रहते थे, वह संपत्ति दान की विषयवस्तु नहीं हो सकती जिसमें वे एक साथ रहते थे और इसीलिए, उपर्युक्त सिद्धांत लागू नहीं होगा । वाद में यह वृत्तांत किया गया था कि प्रतिवादी "अधिमर" है अर्थात् वह एक प्रकार से किराएदार है । ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि प्रतिवादी से ऐसा कोई निवेदन किया गया था कि वह अदाता को स्वामी बनाए या यह कि हक-विलेख का परिदान अदाता को किया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय के आदेश में, वादी साक्षी-1 के साक्ष्य को निर्दिष्ट करते हुए यह अभिलिखित किया गया है, "हमारे पास वादांतर्गत भूमि का कब्जा है .... सुकूर अली के पास संपूर्ण वादांतर्गत भूमि है ।" प्रथम भाग ठीक प्रकार उद्धृत नहीं किया गया है क्योंकि वादी साक्षी-1 द्वारा प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया गया था कि "हमारे पास वादांतर्गत भूमि का कब्जा कभी भी नहीं था ।" दान मौखिक रूप से कब किया गया था या अभिकथित परिदान कब किया गया था, उसका न तो अभिवाक् किया गया है और न ही ऐसा कोई अभिसाक्ष्य दिया गया है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने, अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का परिशीलन करते हुए, सही प्रकार निर्धारण किया है कि वादियों को वादांतर्गत भूमि के कब्जे का परिदान कभी भी नहीं किया गया था । इस प्रकार, मौखिक दान के अवयवों में एक अवयव कब्जे का परिदान है जिसका वर्तमान मामले में लोप किया गया है । कब्जे का प्रतीकात्मक परिदान करने का सिद्धांत, जिस पर अपील न्यायालय का आक्षेपित निर्णय आधारित है, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में चलने योग्य नहीं है ।

26. उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए निचले अपील न्यायालय का आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है । परिणामतः, अपील मंजूर की जाती है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

27. निचले न्यायालय का अभिलेख वापस भेजा जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./क.

रत्नाप्रभा दिगम्बर नेमाडे और अन्य

बनाम

किशन लक्षमण राव देशमुख

तारीख 6 अगस्त, 2015

न्यायमूर्ति ए. पी. भंगाले

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) – धारा 222 – विल का प्रोबेट – प्रोबेट न्यायालय को मात्र विल की विधिमान्यता का परीक्षण करने और उसको निर्णीत करने की सीमित अधिकारिता प्राप्त होती है – विल का औचित्य और वसीयतकर्ता का संपत्ति के बाबत विल निष्पादित करने का अधिकार, दो पृथक् विवाद्यक हैं और यदि कोई व्यक्ति वसीयतकर्ता की संपत्ति के बाबत विल निष्पादित करने के अधिकार को चुनौती देता है तो उसे सक्षम न्यायालय की शरण में जाना होगा ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि तारीख 31 अगस्त, 1994 को निर्णीत 1978 का विशेष सिविल वाद सं. 3 संपत्ति के विभाजन के लिए डिक्री किया गया था । यह वाद अपीलार्थी रत्नाप्रभा द्वारा वादगत भूमि के विभाजन और कब्जे के लिए फाइल किया गया था और उसको वादगत संपत्ति में 3/15 भाग का हकदार अभिनिर्धारित किया गया था । किन्तु इसी संपत्ति के बाबत वसीयतकर्ता स्वर्गीय प्रभाकर रामाराव उग्वेकर ने विल निष्पादित की । अपीलार्थी ने प्रोबेट न्यायालय के समक्ष अभिवाक् किया कि मृतक को विल में वर्णित संपत्ति में कोई विधिक अधिकार, स्वत्व और हित प्राप्त नहीं था । प्रोबेट न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विल में वर्णित संपत्ति के बाबत विधिक अधिकार, स्वत्व और हित का प्रश्न एक जटिल कानूनी प्रश्न है जिसका विनिर्धारण करने की अधिकारिता प्रोबेट न्यायालय को प्राप्त नहीं है और इस प्रश्न का विनिर्धारण सिविल न्यायालय द्वारा किया जा सकता है । इस निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थी ने प्रस्तुत अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह सुस्थापित हो चुका है कि प्रोबेट न्यायालय के कार्य ये हैं कि क्या विल का निष्पादन वास्तव में वसीयतकर्ता द्वारा तब किया गया

जबकि वह स्वस्थ मस्तिष्क का था, किसी प्रपीड़न या अनुचित प्रभाव द्वारा प्रभावित नहीं था और विल को सम्यक् रूप से सत्यापित किया गया है ? यह (प्रोबेट न्यायालय) इस बात को विनिर्धारित करने के लिए सक्षम नहीं है कि क्या वसीयतकर्ता को उस संपत्ति का निस्तारण करने का विधिमान्य और विधिक अधिकार, हित और स्वत्व प्राप्त था या नहीं जिसको वह अपनी विल द्वारा निस्तारित करने का आशय रखता है । प्रोबेट न्यायालय का यह कार्य भी नहीं है कि वह अचल संपत्ति के स्वत्व से संबंधित गंभीर प्रश्नों को विनिर्धारित करे और न ही प्रोबेट न्यायालय इस प्रश्न को विनिर्धारित करेगा कि क्या विल द्वारा निस्तारित संपत्ति संयुक्त पैतृक संपत्ति थी या वसीयतकर्ता की स्व-अर्जित अचल संपत्ति या वह इस बात का पता लगाए कि क्या वह व्यक्ति जो कतिपय संपत्तियों के बाबत विल निष्पादित कर रहा है, को उन संपत्तियों का निस्तारण करने का विधिमान्य और विधिक स्वत्व प्राप्त है । प्रोबेट न्यायालय को इस प्रश्न को भी निर्णीत नहीं करना चाहिए कि वे कौन से व्यक्ति हैं जो संपदा में लाभकारी हित रखते हैं और वह इस विवादास्पद प्रश्न को भी विनिर्धारित नहीं कर सकता कि क्या वसीयतकर्ता की किसी संपत्ति के बाबत वसीयत करने की शक्ति विधि के अनुसार उत्तम है या दूषित । यह प्रोबेट न्यायालय की शक्ति के क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आता कि वह उन जटिल और विस्तृत विवाद्यकों का परीक्षण करे जिनका परीक्षण सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा किया जाना अपेक्षित है । प्रोबेट न्यायालय मात्र विल की विधिमान्यता के परीक्षण से संबद्ध होता है । प्रत्येक मामले में विल के निष्पादन को साबित करने का भार सदैव उस व्यक्ति पर होता है जो विल को (किसी सक्षम न्यायालय के समक्ष) प्रस्तुत करता है और उसको प्रोबेट न्यायालय के अंतःकरण को संतुष्ट करना चाहिए कि उसके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज किसी स्वतंत्र और समर्थ विलकर्ता की अंतिम विल है । यदि इस संदर्भ में अभिलेख पर ऐसा साक्ष्य लाया जाता है जो हितबद्ध और संतोषप्रद नहीं है, तो वसीयतकर्ता के पक्ष में प्रोबेट न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष न्यायसंगत होगा । उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों और ऊपर वर्णित विधिक स्थिति के प्रकाश में मैं श्री भिडे द्वारा उद्धृत निर्णयज विधियों को इस निवेदन पर जोर दिए जाने के प्रयोजनार्थ लाभदायक नहीं पाता कि वर्तमान मामला प्रोबेट न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर दिया जाए । इस प्रकार की प्रार्थना को

स्वीकार करने से कोई लाभदायक उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा । मेरी सुविचारित राय में मुकदमे के पक्षों, जो अत्यधिक गंभीर और जटिल विवाद्यक उठा रहे हैं, को यह अनुतोष उपलब्ध है कि वे वसीयतकर्ता की संपत्ति को निस्तारित करने के विधिक अधिकार, स्वत्व और हित की विधिमान्यता को चुनौती दे जो विल में उल्लिखित है और वे सक्षम सिविल न्यायालय में स्वतंत्र सिविल वाद फाइल करे और सक्षम सिविल न्यायालय में संस्थित उस वाद में विवाद का अंतिम निपटारा कराए । (पैरा 7 और 9)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2015] ए. आई. आर. 2015 (एन. ओ. सी.) 88 (बाम्बे) = 2014 (3) बाम्बे सी. आर. 641 : **नोलाजोनाथन रणभिसे** बनाम **भारत संघ** ; 5

[2008] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 306 = (2007) 11 एस. सी. सी. 357 : **कंवरजीत सिंह ढिंलन** बनाम **हरदयाल सिंह ढिंलन** ; 6

[2006] ए. आई. आर. 2006 बाम्बे 78 = 2006 (1) महाराष्ट्र ला जर्नल 79 : **रघुनाथ राजाराम पाटिल** बनाम **हरिशचंद्र पांडुरंग गायकवाड़** । 4

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की प्रथम अपील सं. 107.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री ए. वी. भिडे

प्रत्यर्थी की ओर से श्री वी. वी. भंगडे

निर्णय

यह अपील 2010 के प्रोबेट मामला सं. 12 में खामगांव के सिविल न्यायाधीश वरिष्ठ वर्ग द्वारा तारीख 17 अक्तूबर, 2004 को पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश की विधिमान्यता और वैधता को चुनौती देते हुए फाइल की गई है ।

2. अपीलार्थियों के विद्वान् अधिवक्ता के अनुसार वसीयतकर्ता स्वर्गीय प्रभाकर रामाराव उग्वेकर का उनके द्वारा अभिकथित निष्पादित रूप से विल (वसीयत) में वर्णित संपत्ति में कोई विधिक अधिकार, स्वत्व और हित नहीं था । विल (वसीयत) को वसीयतकर्ता के मृत्यु के पश्चात् रजिस्ट्रीकृत कराया गया । अतः, इस विल को शंका की दृष्टि से देखा गया चूंकि इसको प्रस्तुत करने वाले ने अभिकथित वसीयतकर्ता की मृत्यु के पश्चात् इसको रजिस्ट्रीकृत कराए जाने में सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया था ।

3. मामले के तथ्य इस प्रकार हैं :–

तारीख 31 अगस्त, 1984 को निर्णीत 1978 के विशेष सिविल वाद सं. 3 को विभाजन के लिए डिक्री किया गया था । वाद को अपीलार्थी रत्नाप्रभा द्वारा वादगत भूमि के विभाजन और कब्जे के लिए फाइल किया गया था । उसको वादगत संपत्ति में 3/15 भाग का हकदार अभिनिर्धारित किया गया था । अभिकथित विल को प्रस्तुत करने वाले पर इस तथ्य को साबित करने का अत्यधिक भार था कि वसीयतकर्ता को वादगत संपत्ति को विल द्वारा निस्तारित करने का पूर्ण अधिकार, स्वत्व और हित था । विल को प्रस्तुत करने वाला इस दायित्व के निर्वहन करने में विफल रहा । किन्तु यह भार अपीलार्थियों को कभी अंतरित नहीं हुआ ।

4. अपीलार्थियों के विद्वान् अधिवक्ता श्री भिडे ने **रघुनाथ राजाराम पाटिल** बनाम **हरिशचंद्र पांडुरंग गायकवाड़**[1] वाले मामले को निर्दिष्ट किया । इस मामले में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया था कि पक्षों के मध्य सिविल न्यायाधीश, वरिष्ठ वर्ग द्वारा प्रोबेट आवेदन को निर्णीत किए जाने के बाबत प्रत्यायोजित शक्तियों के बारे में कोई विवाद नहीं था । इस न्यायालय ने निर्णीत किया कि जब यह विवाद्यक उद्भूत हुआ तो इसे तुरंत निर्णीत किया जाना चाहिए था चूंकि जब प्रोबेट के लिए फाइल किए गए दावे को विवादित किया गया तो न्यायालय का यह कर्तव्य था कि विवाद्यक विरचित करता और उनको निर्णीत करता । श्री भिडे ने इस आधार पर कि न्यायालय विवादास्पद विवाद्यक, यदि कोई हो, को निर्णीत करने के लिए बाध्य है, मामले को प्रोबेट न्यायालय को प्रतिप्रेषित किए जाने के पक्ष में दलील दी ।

---

[1] ए. आई. आर. 2006 बाम्बे 78 = 2006 (1) महाराष्ट्र ला जर्नल 79.

5. श्री भिडे ने **नोलाजोनाथन रणभिसे** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को इस निवेदन पर जोर देते हुए निर्दिष्ट किया कि 1869 के बाम्बे सिविल न्यायालय अधिनियम की धारा 28क को 1925 के भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के उपबंधों के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया जा चुका है । 1925 के भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 299 के अधीन जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की जाती है चूंकि कानूनी रूप से जिला न्यायाधीश द्वारा पारित प्रत्येक आदेश इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों को दृष्टि में रखते हुए अपीलों पर लागू 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता (1908 का 5) के उपबंधों के अनुसार उच्च न्यायालय में अपील के अधीन होगा ।

6. इसके विपरीत प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री भंगडे ने **कंवरजीत सिंह ढिंलन** बनाम **हरदयाल सिंह ढिंलन**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब इस निवेदन पर बल देते हुए लिया कि अचल संपत्ति में अधिकार, स्वत्व और हित की विधिमान्यता के गंभीर प्रश्न को अंतर्वलित करने वाले विवादास्पद विवाद्यक को केवल सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा निर्णीत किया जा सकता है और न कि सीमित अधिकारिता प्राप्त प्रोबेट न्यायालय द्वारा जो मात्र विल की विधिमान्यता का परीक्षण कर सकता है, सुन सकता है और उसको निर्णीत कर सकता है ।

7. हमने दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा किए गए निवेदनों पर विचार किया । अब यह सुस्थापित हो चुका है कि प्रोबेट न्यायालय के कार्य ये हैं कि क्या विल का निष्पादन वास्तव में वसीयतकर्ता द्वारा तब किया गया जबकि वह स्वस्थ मस्तिष्क का था, किसी प्रपीड़न या अनुचित प्रभाव द्वारा प्रभावित नहीं था और विल को सम्यक् रूप से सत्यापित किया गया है । यह (प्रोबेट न्यायालय) इस बात को विनिर्धारित करने के लिए सक्षम नहीं है कि क्या वसीयतकर्ता को उस संपत्ति का निस्तारण करने का विधिमान्य और विधिक अधिकार, हित और स्वत्व प्राप्त था या नहीं जिसको वह अपनी विल द्वारा निस्तारित करने का आशय रखता है । प्रोबेट न्यायालय का यह कार्य भी नहीं है कि वह अचल संपत्ति के स्वत्व से संबंधित गंभीर प्रश्नों को

---

[1] ए. आई. आर. 2015 (एन. ओ. सी.) 88 (बाम्बे) = 2014 (3) बाम्बे सी. आर. 641.
[2] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 306 = (2007) 11 एस. सी. सी. 357.

विनिर्धारित करे और न ही प्रोबेट न्यायालय इस प्रश्न को विनिर्धारित करेगा कि क्या विल द्वारा निस्तारित संपत्ति संयुक्त पैतृक संपत्ति थी या वसीयतकर्ता की स्व-अर्जित अचल संपत्ति या वह इस बात का पता लगाए कि क्या वह व्यक्ति जो कतिपय संपत्तियों के बाबत विल निष्पादित कर रहा है, को उन संपत्तियों का निस्तारण करने का विधिमान्य और विधिक स्वत्व प्राप्त है । प्रोबेट न्यायालय को इस प्रश्न को भी निर्णीत नहीं करना चाहिए कि वे कौन से व्यक्ति हैं जो संपदा में लाभकारी हित रखते हैं और वह इस विवादास्पद प्रश्न को भी विनिर्धारित नहीं कर सकता कि क्या वसीयतकर्ता की किसी संपत्ति के बाबत वसीयत करने की शक्ति विधि के अनुसार उत्तम है या दूषित । यह प्रोबेट न्यायालय की शक्ति के क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आता कि वह उन जटिल और विस्तृत विवाद्यकों का परीक्षण करे जिनका परीक्षण सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा किया जाना अपेक्षित है । प्रोबेट न्यायालय मात्र विल की विधिमान्यता के परीक्षण से संबद्ध होता है । प्रत्येक मामले में विल के निष्पादन को साबित करने का भार सदैव उस व्यक्ति पर होता है जो विल को (किसी सक्षम न्यायालय के समक्ष) प्रस्तुत करता है और उसको प्रोबेट न्यायालय के अंतःकरण को संतुष्ट करना चाहिए कि उसके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज किसी स्वतंत्र और समर्थ विलकर्ता की अंतिम विल है । यदि इस संदर्भ में अभिलेख पर ऐसा साक्ष्य लाया जाता है जो हितबद्ध और संतोषप्रद नहीं है, तो वसीयतकर्ता के पक्ष में प्रोबेट न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष न्यायसंगत होगा ।

8. तथापि, एक अन्य नियम यह है कि यदि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जो प्रोबेट न्यायालय की शंका को बढ़ावा देती हैं, चाहे उनकी प्रकृति कोई भी हो, तो इस शंका के समाधान का भार उन लोगों पर होगा जो विल को प्रस्तुत करते हैं और उन पर इस तथ्य को साबित करने का भी भार होगा कि वसीयतकर्ता को विल की अंतर्वस्तु ज्ञात थी । यह केवल वहां होता है जहां साबित करने का भार उन लोगों को अंतरित हो जाता है जो कपट या अनुचित प्रभाव को साबित करने के प्रयोजनार्थ विल की विधिमान्यता का विरोध करते हैं या कोई अन्य कारण जिसका अवलंब वे विल को प्रस्तुत करने वाले के पक्षकथन को असत्य साबित करने के लिए लेते हैं ।

9. उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों और ऊपर वर्णित

विधिक स्थिति के प्रकाश में मैं श्री भिडे द्वारा उद्धृत निर्णयज विधियों को इस निवेदन पर जोर दिए जाने के प्रयोजनार्थ लाभदायक नहीं पाता कि वर्तमान मामला प्रोबेट न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर दिया जाए । इस प्रकार की प्रार्थना को स्वीकार करने से कोई लाभदायक उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा । मेरी सुविचारित राय में मुकदमे के पक्षों, जो अत्यधिक गंभीर और जटिल विवाद्यक उठा रहे हैं, को यह अनुतोष उपलब्ध है कि वे वसीयतकर्ता की संपत्ति को निस्तारित करने के विधिक अधिकार, स्वत्व और हित की विधिमान्यता को चुनौती दे जो विल में उल्लिखित हैं और वे सक्षम सिविल न्यायालय में स्वतंत्र सिविल वाद फाइल करे और सक्षम सिविल न्यायालय में संस्थित उस वाद में विवाद का अंतिम निपटारा कराए ।

10. ऐसा इसलिए है कि प्रोबेट न्यायालय को विल की विधिमान्यता का परीक्षण करने और उसको निर्णीत करने की सीमित अधिकारिता प्राप्त है अर्थात् मात्र वसीयत का निपटारा करने की सीमित अधिकारिता प्राप्त होती है । विल का औचित्य और वसीयतकर्ता का संपत्ति के बाबत विल निष्पादित करने का अधिकार दो पृथक् विवाद्यक हैं और कोई व्यक्ति जो वादगत संपत्ति को निस्तारित करने के वसीयतकर्ता के अधिकार, स्वत्व और हित की विधिमान्यता को चुनौती देता है, सक्षम सिविल न्यायालय के फोरम से संपत्ति को वसीयतकर्ता द्वारा वसीयत द्वारा विधिक अधिकार, स्वत्व और हित के बाबत निर्णय प्राप्त करने से बच नहीं सकता । अतः मैं अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता । अपील लागत सहित खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

शु.

———————

गणेश सिंह

बनाम

निदेशक, वर्धमान महावीर विश्वविद्यालय अजमेर और अन्य

तारीख 22 अगस्त, 2015

न्यायमूर्ति आलोक शर्मा

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14) – धारा 25च(क) – छंटनी – मजदूरी का निर्धारण – अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में संदेय मजदूरी वास्तव में संदत्त की जा रही मासिक मजदूरी है या दैनिक मजदूरी को 30 से गुणा करके निकाली गई 30 दिन की मजदूरी है – अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन दिए जाने वाले एक मास के नोटिस के आधार पर दी जाने वाली मजदूरी, कर्मचारी की छंटनी के पूर्व दी जाने वाली मजदूरी से अधिक होती है अतएव छंटनी करते समय संदाय की जाने वाली मजदूरी के निर्धारण में 30 दिन का गुणक लागू करना चाहिए न कि 26 दिन का गुणक लागू करना चाहिए ।

तारीख 1 सितम्बर, 1991 से लेकर तारीख 31 जनवरी, 1993 के बीच याची प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय में एक नियमित कर्मचारी था । इस कर्मचारी को तारीख 1 फरवरी, 1993 से प्रभावी होने वाले तारीख 30 जनवरी, 1993 के तर्कसम्मत आदेश द्वारा छंटनी कर दिया गया । तारीख 30 जनवरी, 1993 के आदेश में औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के उपबंधों का अनुसरण किया गया था, जिसके द्वारा याची की छंटनी कर दी गई, उसे 974/- रुपए का संदाय तारीख 29 जनवरी, 1993 के ड्राफ्ट सं. 83992 द्वारा किया गया जिसमें उसको एक मास की मजदूरी के एवज में 634/- रुपए और 340/- रुपए उसे 15 दिन की मजदूरी के प्रतिकर के रूप में दिए गए थे क्योंकि याची अपने छंटनी के पूर्व अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन यथाउपबंधित एक वर्ष का समय पूरा कर चुका था । तारीख 30 जनवरी, 1993 के आदेशानुसार की गई याची की छंटनी को 10 वर्ष 2 मास के पश्चात् याची द्वारा चुनौती दी गई जिसमें याची ने अधिनियम, 1947 के उपबंधों के अधीन औद्योगिक विवाद उठाने की ईप्सा की थी । सरकार ने तारीख 27 अक्तूबर, 2004 के

आदेश द्वारा अत्यधिक विलंबित पाए जाने पर पहली बार में ही इस विवाद का संज्ञान लेने से इनकार कर दिया और उसका निर्देश लेने से भी इनकार कर दिया । याची द्वारा 2006 की एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 4076 फाइल की गई और तारीख 15 जुलाई, 2009 के आदेश द्वारा इस न्यायालय की ओर से मंजूर की गई । अधिनियम, 1947 के अधीन याची के विवाद संबंधी निर्देश को खारिज करने वाले तारीख 27 अक्तूबर, 2004 के सरकार के आदेश को अभिखंडित कर दिया गया और उसे अपास्त कर दिया गया और मामले पर उसमें हुए विलंब को अनदेखा करते हुए विचार करने की ईप्सा की गई । याची ने यह अभिकथन करते हुए दावा किया कि अधिनियम, 1947 की धारा 25च, 25छ और 25ज, का उल्लंघन किया गया है और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय ने इनकार करते हुए अपना उत्तर फाइल किया है । याची ने स्वयं अपनी परीक्षा एकमात्र साक्षी अर्थात् आवेदक साक्षी-1 के रूप में परीक्षा कराई है और विश्वविद्यालय ने भी सुरेन्द्र माथुर की परीक्षा अनावेदक साक्षी-1 के रूप में कराई है और यह भी एकमात्र साक्षी है । अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किए गए अभिवाकों और साक्ष्य पर विचार करने पर, अधिकरण ने यह निष्कर्ष निकाला कि अधिनियम, 1947 की धारा 25च का उल्लंघन नहीं किया गया है और न ही धारा 25ज और 25झ का कोई उल्लंघन किया गया है जैसा कि याची ने दावा किया था । इसलिए यह रिट याचिका फाइल की गई । उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, यह प्रश्न उद्भूत होता है कि याची की छंटनी किए जाने के समय पर उसकी मासिक मजदूरी क्या थी जिसका उसे संदाय एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में किया जाना था जो कि अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन एक शर्त है ? एक श्रमिक की मासिक मजदूरी तथ्य का प्रश्न है अर्थात् यह अभिलेख पर प्रस्तुत प्रत्यक्ष साक्ष्य पर आधारित होता है न कि किसी संगणना के पश्चात् प्रकट होता हो । वर्तमान मामले में अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य जो अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और इस न्यायालय के समक्ष भी, रिट याचिका के उपाबंध 2, 3, 4, 5 और 6 हैं जिनसे यह दर्शित होता है कि याची नियमित कर्मचारी था जिसका मासिक वेतन 588.90 रुपए था । मुझे याची के काउंसेल की इस दलील में कोई बल दिखाई नहीं देता है कि यद्यपि याची को 588.90 रुपए की मासिक मजदूरी का संदाय किया जा रहा था, फिर भी एक महीने का नोटिस दिए जाने के बदले में वह इससे

अधिक रकम अर्थात् 679.50 रुपए पाने का हकदार था । तथापि, इस न्यायालय ने देवेन्द्र सलोलिया वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि जिस कर्मचारी को 26 दिनों के आधार पर गणना करके मासिक मजदूरी का संदाय दिया जाता है वह एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले 30 दिनों के हिसाब से मासिक मजदूरी का संदाय किए जाने का हकदार है जिसका यह कारण है कि अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) में "मास" शब्द का अर्थ 26 दिन नहीं अपितु 30 दिन है । 30 दिनों की मजदूरी का संदाय न किए जाने से अधिनियम 1947 की धारा 25च(क) का अतिक्रमण होगा । इसलिए न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि इस मामले में का याची 603/- रुपए प्रतिमास की मजदूरी पर नियमित रूप से नियोजित था जिसे अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन आदेशित एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में 696/- रुपए का संदाय किया जाना चाहिए था । न्यायालय ने जो निष्कर्ष निकाला है वह एक मास की कुल मजदूरी को 26 दिनों से विभाजित किया गया है और प्रतिदिन की मजदूरी 23.20 रुपए निकाली गई है जिसके आधार पर उसे 30 दिनों की कुल मजदूरी की संगणना की गई है । इस प्रकार न्यायालय ने 603/- रुपए प्रतिमास मजदूरी के प्रति एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में संदाय की जाने वाली मजदूरी 696/- रुपए संगणित की और याची की छंटनी को अवैध घोषित किया तथा यह अभिनिर्धारित किया कि इससे अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) का अतिक्रमण होता है । मेरी राय में, जब किसी कर्मचारी को उसको मासिक आय का संदाय किया जाता है तब इस प्रकार संदाय की गई रकम को अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन दिए जाने वाले एक मास के नोटिस के बदले में दी जाने वाली मजदूरी के समान माना जाना चाहिए और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय के काउंसेल द्वारा इस संबंध में ठीक ही दलील दी गई है । मासिक मजदूरी का अंकगणितीय आधार पर एक प्रतिकूल निर्वचन किया गया है अर्थात् मासिक मजदूरी को प्रतिदिन की मजदूरी में विभाजित करके 30 दिन की मजदूरी, अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन दिए जाने वाले एक मास के नोटिस के बदले में दी जाने वाली मजदूरी से अधिक होती है । उपरोक्त के अतिरिक्त यह प्रतीत होता है कि देवेन्द्र सलोलिया वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 पर विचार नहीं किया जिसके अंतर्गत धारा 5 के अधीन राज्य सरकार मासिक मजदूरी तथा दैनिक मजदूरी दोनों को अधिसूचित करने की हकदार है । उस मामले में

दैनिक तथा मासिक मजदूरी की संगणना करते समय 26 दिन लिए जाते हैं जिससे यह सुनिश्चित होता है कि 26 दिनों की मजदूरी का संदाय किया जाएगा जिसमें उन चार दिनों की मजदूरी भी सम्मिलित होती है जिनमें कर्मचारी काम पर नहीं होता है । इस प्रकार चार छुट्टियों की मजदूरी 26 दिन के लिए किए गए संदाय में सम्मिलित होती है । अतः, 1948 के अधिनियम के अधीन मासिक मजदूरी कार्य के 26 दिनों के आधार पर ही संगणित की जाती है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब उपबंध की भाषा सरल और स्पष्ट हो और उसमें किसी प्रकार की कोई भी अस्पष्टता न हो तब कड़ी संरचना का नियम लागू होता है और उस उपबंध का निर्वचन साहित्यिक रूप से किया जाना चाहिए । इसी प्रकार अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) का निर्वचन भी किया जाना चाहिए । अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में मासिक मजदूरी का संदाय किया जाएगा । माननीय उच्चतम न्यायालय ने भिन्न मत अभिनिर्धारित किया कि उपदान की गणना करने के लिए विधि के अधीन यह अपेक्षा की जाती है कि औसत मासिक 26 दिनों के हिसाब से मानी जानी चाहिए न कि 30 दिन के हिसाब से, क्योंकि कर्मचारी सामान्यतया एक सप्ताह में एक छुट्टी पाता है और वह एक मास में 26 दिन ही कार्य करता है । तथापि, वर्तमान मामले में महत्वपूर्ण बात यह सुसंगत है कि सामान्यतः यह देखा गया है कि मासिक मजदूरी के लिए कार्य के 26 दिन लेना कोई नई या अज्ञात बात नहीं है । इस प्रकार मेरी यह सुविचारित राय है कि जब किसी नियमित कर्मचारी को मासिक मजदूरी का संदाय किया जाता है वही मजदूरी अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में संदाय की जानी चाहिए भले ही महीने में कार्य के 26 दिन ही क्यों न लिए जाएं । 26 दिनों से अधिक दिन की मजदूरी का संदाय छुट्टी वाले चार दिनों के संदाय को भी सम्मिलित करेगा और वह मजदूरी प्रभावी रूप से अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के प्रयोजनों के लिए एक मास की अर्थात् 30 दिन की मजदूरी कहलाएगी । अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले जो मासिक मजदूरी का संदाय किया जाता है उसकी गणना देवेन्द्र सलोलिया वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाई गई अंकगणितीय संगणना के आधार पर नहीं की जा सकती जिससे धारा 25च(क) के अधीन दिए जाने वाले एक मास के नोटिस के बदले में दी

जाने वाली मजदूरी में असमानता पैदा होती है जो कि एक कर्मचारी द्वारा उसके नियोजन के दौरान वास्तव में और स्वीकृत रूप से प्राप्त की गई मजदूरी से अधिक है । तथापि, मैं देवेन्द्र सलोलिया वाले मामले में दिए गए निर्णय को समान न्यायपीठ होने के आधार पर, अभिखंडित या अपास्त नहीं कर सकता क्योंकि यह सुस्थापित है कि समान न्यायपीठ यदि भिन्न मत व्यक्त करती है तब न्यायिक अनुशासन के लिए उसे उस मामले को प्राधिकृत निर्णय दिए जाने के लिए वृहत्तर न्यायपीठ को सौंप देना चाहिए । इसके अतिरिक्त माननीय उच्चतम न्यायालय का मत न्याय प्रशासन के हित में है कि विधि के उपबंध का निर्वचन किए जाने में असंगत मत नहीं दिया जाना चाहिए । (पैरा 7, 8, 9 और 10)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2007]	(2007) 2 एस. सी. सी. 265 : **गुरू जम्बेश्वर विश्वविद्यालय** बनाम **धर्मपाल** ;	9
[1990]	(1990) 1 आर. एल. आर. 734 : **देवेन्द्र सलोलिया** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	5
[1984]	(1984) 4 एस. सी. सी. 356 : **जीवन लाल** बनाम **अपीली प्राधिकरण** ;	9
[1980]	(1980) 4 एस. सी. सी. 106 : **दिग्विजय वूलन मिल्स लिमिटेड** बनाम **महेन्द्र प्रताप राय बुच** ।	9

आरम्भिक (सिविल) अधिकारिता : 2013 की सिविल रिट याचिका सं. 1365.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री सुनील सम्दरिया

प्रत्यर्थियों की ओर से श्रीमती अनीता अग्रवाल

न्यायमूर्ति आलोक शर्मा – इस रिट याचिका में 2009 की एल सी आर सं. 26 में श्रम न्यायालय और औद्योगिक अधिकरण, अजमेर द्वारा तारीख 11 दिसम्बर, 2012 को पारित किए गए पंचाट को चुनौती दी गई

है और उस पंचाट द्वारा याची के उस दावे को खारिज कर दिया गया कि प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा याची की जो छंटनी की गई है वह अवैध और अनुचित है और याची के पुनःस्थापित किए जाने को भी पंचाट द्वारा खारिज कर दिया गया ।

2. तारीख 1 सितम्बर, 1991 से लेकर तारीख 31 जनवरी, 1993 के बीच याची प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय में एक नियमित कर्मचारी था । इस कर्मचारी को तारीख 1 फरवरी, 1993 से प्रभावी होने वाले तारीख 30 जनवरी, 1993 के तर्कसम्मत आदेश द्वारा छंटनी कर दिया गया । तारीख 30 जनवरी, 1993 के आदेश में औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम 1947" कहा गया है) की धारा 25च(क) के उपबंधों का अनुसरण किया गया था, जिसके द्वारा याची की छंटनी कर दी गई, उसे 974/- रुपए का संदाय तारीख 29 जनवरी, 1993 के ड्राफ्ट सं. 83992 द्वारा किया गया जिसमें उसको एक मास की मजदूरी के एवज में 634/- रुपए और 340/- रुपए उसे 15 दिन की मजदूरी के प्रतिकर के रूप में दिए गए थे क्योंकि याची अपने छंटनी के पूर्व अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन यथाउपबंधित एक वर्ष का समय पूरा कर चुका था ।

3. तारीख 30 जनवरी, 1993 के आदेशानुसार की गई याची की छंटनी को 10 वर्ष 2 मास के पश्चात् याची द्वारा चुनौती दी गई जिसमें याची ने अधिनियम, 1947 के उपबंधों के अधीन औद्योगिक विवाद उठाने की ईप्सा की थी । सरकार ने तारीख 27 अक्तूबर, 2004 के आदेश द्वारा अत्यधिक विलंबित पाए जाने पर पहली बार में ही इस विवाद का संज्ञान लेने से इनकार कर दिया और उसका निर्देश लेने से भी इनकार कर दिया । याची द्वारा 2006 की एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 4076 फाइल की गई और तारीख 15 जुलाई, 2009 के आदेश द्वारा इस न्यायालय की ओर से मंजूर की गई । अधिनियम, 1947 के अधीन याची के विवाद संबंधी निर्देश को खारिज करने वाले तारीख 27 अक्तूबर, 2004 के सरकार के आदेश को अभिखंडित कर दिया गया और उसे अपास्त कर दिया गया और मामले पर उसमें हुए विलंब को अनदेखा करते हुए विचार करने की ईप्सा की गई । इस पर सरकार ने तारीख 29 अक्तूबर, 2010 के आदेश द्वारा अजमेर अधिकरण को यह आदेश पारित किया कि इस विवाद के निर्देश पर विचार किया जाए । निर्देश निम्न प्रकार है :–

"क्या प्रार्थी श्रमिक श्री गणेश सिंह पुत्र स्व. श्री भेरु सिंह रावत निवासी, एल. आई. सी. कालोनी, हरियाणा भवन के पास गांधी नगर गली नं. 1 वैशाली नगर, अजमेर को अप्रार्थी-1 निदेशक, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय केंद्र, अजमेर, 2-रजिस्ट्रार वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा राजस्थान द्वारा तारीख 1 फरवरी, 1993 से सेवा पृथक् किया जाना उचित एवं वैध है ? यदि नहीं तो, श्रमिक किस राहत को प्राप्त करने का अधिकारी है ?"

4. याची ने यह अभिकथन करते हुए दावा किया कि अधिनियम, 1947 की धारा 25च, 25छ और 25ज, का उल्लंघन किया गया है और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय ने इनकार करते हुए अपना उत्तर फाइल किया है । याची ने स्वयं अपनी परीक्षा एकमात्र साक्षी अर्थात् आवेदक साक्षी-1 के रूप में परीक्षा कराई है और विश्वविद्यालय ने भी सुरेन्द्र माथुर की परीक्षा अनावेदक साक्षी-1 के रूप में कराई है और यह भी एकमात्र साक्षी है । अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किए गए अभिवाकों और साक्ष्य पर विचार करने पर, अधिकरण ने यह निष्कर्ष निकाला कि अधिनियम, 1947 की धारा 25च का उल्लंघन नहीं किया गया है और न ही धारा 25ज और 25झ का कोई उल्लंघन किया गया है जैसाकि याची ने दावा किया था । इसलिए यह रिट याचिका फाइल की गई है ।

5. याची के काउंसेल द्वारा एकमात्र यह दलील दी गई है कि अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर अधिकरण द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष अनुचित है कि याची को अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के निबंधनों में एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में एक मास के वेतन का संदाय किया गया था और याची के काउंसेल ने **देवेन्द्र सलोलिया** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले में सुनिश्चित किए गए एक मास के वेतन के बदले में किए गए संदाय पर इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है । काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय ने एक मास का नोटिस दिए जाने के लिए जिस मजदूरी का संदाय किया जाता है उसकी गणना नहीं की है जैसाकि अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) द्वारा आदेशित है क्योंकि याची को 26 दिनों के वेतन का संदाय किया गया था जबकि उसे पूरे 30 दिनों का संदाय किया जाना चाहिए था । काउंसेल ने यह दलील दी है कि याची को केवल अधिनियम, 1947 की धारा

[1] (1990) 1 आर. एल. आर. 734.

25च(क) के अधीन एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में 634/- रुपए का संदाय किया गया था जबकि उसे 680/- रुपए का संदाय किया जाना चाहिए था । काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि **देवेन्द्र सलोलिया** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा विशिष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन नोटिस दिए जाने के बदले में जो मजदूरी दी जाती है वह 26 दिनों के वेतन का संदाय नहीं अपितु 30 दिन के वेतन का संदाय होना चाहिए । याची को नोटिस की अवधि के लिए 26 दिन के वेतन का संदाय किया गया है और इस प्रकार तारीख 11 दिसंबर, 2012 को पारित किया गया पंचाट मात्र इस आधार पर अपास्त किए जाने योग्य है कि वह अधिनियम, 1947 की धारा 25च के प्रतिकूल है, इस प्रकार याची की छंटनी गलत है । दलील दिए जाने के दौरान अधिनियम, 1947 की धारा 25च(ख) या धारा 25छ और धारा 25ज के अधीन संदेय प्रतिकर के संदर्भ में अन्य कोई भी आधार याची के काउंसेल द्वारा नहीं लिया गया है । तथापि, यह अभिलिखित किया गया है कि तारीख 11 दिसंबर, 2012 को पारित किया गया आक्षेपित पंचाट ठीक ही पारित किया गया है क्योंकि अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि इन आधारों में से कोई भी आधार याची द्वारा नहीं लिया गया था क्योंकि याची ने यह स्वीकार कर लिया था कि उसने अधिनियम, 1947 की धारा 25च(ख) के अधीन प्रतिकर के रूप से सम्यक् रूप से 340/- रुपए प्राप्त कर लिए थे । इसके अतिरिक्त जिन व्यक्तियों को याची के सेवा से हटाए जाने के पश्चात् नियुक्त किया गया था वे या तो न्यायालय के आदेश के निबंधनों में नियुक्त किए गए थे या अन्यथा उन्हें नियमित रूप से सम्यक् प्रक्रिया का पालन करते हुए नियुक्त किया गया था जबकि याची तारीख 30 जनवरी, 1993 को अपनी छंटनी के समय पर नियमित कर्मचारी था ।

6. प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय की ओर से हाजिर होते हुए श्रीमती अनीता अग्रवाल ने यह दलील दी है कि अधिकरण द्वारा तारीख 11 दिसम्बर, 2012 को पूरी तरह सोच-विचार के पश्चात् पंचाट पारित किया गया है और वह अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य पर आधारित है । याची के काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील कि अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) का अनुपालन नहीं किया गया है, अनुचित है । यह दलील दी गई है कि याची को, रिट याचिका के साथ संलग्न वाउचर के अनुसार, स्पष्ट रूप से 588.90 रुपए की मासिक मजदूरी का संदाय किया गया था । अब यह

बात महत्वपूर्ण नहीं रह जाती है कि याची को 588.90 रुपए की मजदूरी का जो मासिक संदाय किया गया था वह 22.65 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से किया गया था । काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि मासिक मजदूरी की संगणना का कोई भी तरीका हो, इस बात में कोई विवाद नहीं है कि मजदूरी की रकम 588.90 रुपए थी । याची की छंटनी किए जाने के समय पर अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अनुपालन में, याची केवल 588.90 रुपए एक महीने का नोटिस दिए जाने के बदले में पाने का हकदार हो सकता था । याची को 634/- रुपए का संदाय किया गया था । काउंसेल ने यह दलील दी है कि याची नियमित कर्मचारी था, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 और उसके अधीन जारी की गई अधिसूचना के अंतर्गत उसको प्रत्येक मास 26 दिन के हिसाब से अर्थात् प्रतिदिन 22.65 रुपए की दर से गणना की गई थी जिसमें चार छुट्टियों की मजदूरी को भी ध्यान में रखा गया था । 22.65 रुपए की जो दैनिक मजदूरी दी गई थी वह एक दिन के काम की मजदूरी से अधिक थी क्योंकि उसमें चार छुट्टियों वाले दिनों की मजदूरी का अंश भी जोड़ा गया था । यह भी दलील दी गई है कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अधीन यही तरीका सभी संस्थाओं द्वारा अपनाया गया है । काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि यदि इसके प्रतिकूल निर्वचन किया जाता है तो वह याची की मासिक मजदूरी का गलत अर्थ लगाने की कोटि में आएगा क्योंकि उसे नियमित कर्मचारी के रूप में उसके नियोजन के दौरान 588.90 रुपए दिए जा रहे थे और अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में उसे 679.50 रुपए का भुगतान किया गया है । काउंसेल ने यह दलील दी है कि **देवेन्द्र सलोलिया** (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया इस न्यायालय का निर्णय विधि का सही स्पष्टीकरण नहीं है जो चलने योग्य नहीं है क्योंकि इस निर्णय में निर्वचन की अर्थहीनता पर विचार नहीं किया गया है जिसका उल्लेख याची की छंटनी के समय अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन मासिक मजदूरी का संदाय किए जाने के संबंध में किया गया है । काउंसेल ने इस बात पर बल दिया है वर्तमान मामले में याची द्वारा फाइल किए गए उपाबंध 2, 3, 4, 5 और 6 से यह स्वीकृत तथ्य सामने आता है कि याची की मासिक मजदूरी सितम्बर, अक्तूबर और नवम्बर, 1992 तक 588.90 रुपए थी । तारीख 30 जनवरी, 1993 को की गई छंटनी की विधिकता पर आक्षेप करने का जो प्रयास इस आधार पर किया गया है कि प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय याची को

मासिक मजदूरी के रूप में 679.50 रुपए का संदाय करने में असफल रहा है, सारहीन है । इस न्यायालय का ध्यान याची द्वारा ट्राइब्यूनल के समक्ष स्वीकार किए गए इस तथ्य की ओर भी दिलाया गया है जिसमें उसने यह कथन किया था कि मासिक संदाय केवल 26 दिनों का ही किया जाता था :–

"यह सही है कि मुझे 26 दिन का वेतन दिया जाता था"

यह निवेदन किया गया है कि याची दैनिक मजदूर नहीं था अर्थात् वह मासिक वेतन पर रखा गया था ।

7. वर्तमान मामले में, यह प्रश्न उद्भूत होता है कि याची की छंटनी किए जाने के समय पर उसकी मासिक मजदूरी क्या थी जिसका उसे संदाय एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में किया जाना था जो कि अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन एक शर्त है ? एक श्रमिक की मासिक मजदूरी तथ्य का प्रश्न है अर्थात् यह अभिलेख पर प्रस्तुत प्रत्यक्ष साक्ष्य पर आधारित होता है न कि किसी संगणना के पश्चात् प्रकट होता है । वर्तमान मामले में अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य जो अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और इस न्यायालय के समक्ष भी, रिट याचिका के उपाबंध 2, 3, 4, 5 और 6 हैं जिनसे यह दर्शित होता है कि याची नियमित कर्मचारी था जिसका मासिक वेतन 588.90 रुपए था । मुझे याची के काउंसेल की इस दलील में कोई बल दिखाई नहीं देता है कि यद्यपि याची को 588.90 रुपए की मासिक मजदूरी का संदाय किया जा रहा था, फिर भी एक महीने का नोटिस दिए जाने के बदले में वह इससे अधिक रकम अर्थात् 679.50 रुपए पाने का हकदार था । तथापि, इस न्यायालय ने **देवेन्द्र सलोलिया** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि जिस कर्मचारी को 26 दिनों के आधार पर गणना करके मासिक मजदूरी का संदाय दिया जाता है वह एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले 30 दिनों के हिसाब से मासिक मजदूरी का संदाय किए जाने का हकदार है जिसका यह कारण है कि अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) में "मास" शब्द का अर्थ 26 दिन नहीं अपितु 30 दिन है । 30 दिनों की मजदूरी का संदाय न किए जाने से अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) का अतिक्रमण होगा । इसलिए न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि इस मामले में का याची 603/- रुपए प्रतिमास की मजदूरी पर नियमित रूप से नियोजित था जिसे अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन आदेशित एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में 696/- रुपए का

संदाय किया जाना चाहिए था । न्यायालय ने जो निष्कर्ष निकाला है वह एक मास की कुल मजदूरी को 26 दिनों से विभाजित किया गया है और प्रतिदिन की मजदूरी 23.20 रुपए निकाली गई है जिसके आधार पर उसे 30 दिनों की कुल मजदूरी की संगणना की गई है । इस प्रकार न्यायालय ने 603/- रुपए प्रतिमास मजदूरी के प्रति एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में संदाय की जाने वाली मजदूरी 696/- रुपए संगणित की और याची की छंटनी को अवैध घोषित किया तथा यह अभिनिर्धारित किया कि इससे अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) का अतिक्रमण होता है ।

8. मेरी राय में, जब किसी कर्मचारी को उसको मासिक आय का संदाय किया जाता है तब इस प्रकार संदाय की गई रकम को अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन दिए जाने वाले एक मास के नोटिस के बदले में दी जाने वाली मजदूरी के समान माना जाना चाहिए और प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय के काउंसेल द्वारा इस संबंध में ठीक ही दलील दी गई है । मासिक मजदूरी का अंकगणितीय आधार पर एक प्रतिकूल निर्वचन किया गया है अर्थात् मासिक मजदूरी को प्रतिदिन की मजदूरी में विभाजित करके 30 दिन की मजदूरी, अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन दिए जाने वाले एक मास के नोटिस के बदले में दी जाने वाली मजदूरी से अधिक होती है । उपरोक्त के अतिरिक्त यह प्रतीत होता है कि **देवेन्द्र सलोलिया** (उपरोक्त) वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 पर विचार नहीं किया जिसके अंतर्गत धारा 5 के अधीन राज्य सरकार मासिक मजदूरी तथा दैनिक मजदूरी दोनों को अधिसूचित करने की हकदार है । उस मामले में दैनिक तथा मासिक मजदूरी की संगणना करते समय 26 दिन लिए जाते हैं जिससे यह सुनिश्चित होता है कि 26 दिनों की मजदूरी का संदाय किया जाएगा जिसमें उन चार दिनों की मजदूरी भी सम्मिलित होती है जिनमें कर्मचारी काम पर नहीं होता है । इस प्रकार चार छुट्टियों की मजदूरी 26 दिन के लिए किए गए संदाय में सम्मिलित होती है । अतः, 1948 के अधिनियम के अधीन मासिक मजदूरी कार्य के 26 दिनों के आधार पर ही संगणित की जाती है ।

9. **गुरू जम्बेश्वर विश्वविद्यालय** बनाम **धर्मपाल**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब उपबंध

[1] (2007) 2 एस. सी. सी. 265.

की भाषा सरल और स्पष्ट हो और उसमें किसी प्रकार की कोई भी अस्पष्टता न हो तब कड़ी संरचना का नियम लागू होता है और उस उपबंध का निर्वचन साहित्यिक रूप से किया जाना चाहिए । इसी प्रकार अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) का निर्वचन भी किया जाना चाहिए । अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में मासिक मजदूरी का संदाय किया जाएगा । इसके अतिरिक्त **जीवन लाल** बनाम **अपीली प्राधिकरण**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब **दिग्विजय वूलन मिल्स लिमिटेड** बनाम **महेन्द्र प्रताप राय बुच**[2] वाले मामले में लिया गया जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने भिन्न मत अभिनिर्धारित किया कि उपदान की गणना करने के लिए विधि के अधीन यह अपेक्षा की जाती है कि औसत मासिक 26 दिनों के हिसाब से मानी जानी चाहिए न कि 30 दिन के हिसाब से, क्योंकि कर्मचारी सामान्यतया एक सप्ताह में एक छुट्टी पाता है और वह एक मास में 26 दिन ही कार्य करता है । तथापि, वर्तमान मामले में महत्वपूर्ण बात यह सुसंगत है कि सामान्यतः यह देखा गया है कि मासिक मजदूरी के लिए कार्य के 26 दिन लेना कोई नई या अज्ञात बात नहीं है । इस प्रकार मेरी यह सुविचारित राय है कि जब किसी नियमित कर्मचारी को मासिक मजदूरी का संदाय किया जाता है वही मजदूरी अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में संदाय की जानी चाहिए भले ही महीने में कार्य के 26 दिन ही क्यों न लिए जाएं । 26 दिनों से अधिक दिन की मजदूरी का संदाय छुट्टी वाले चार दिनों के संदाय को भी सम्मिलित करेगा और वह मजदूरी प्रभावी रूप से अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के प्रयोजनों के लिए एक मास की अर्थात् 30 दिन की मजदूरी कहलाएगी । अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले जो मासिक मजदूरी का संदाय किया जाता है उसकी गणना **देवेन्द्र सलोलिया** (उपरोक्त) वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाई गई अंकगणितीय संगणना के आधार पर नहीं की जा सकती जिससे धारा 25च(क) के अधीन दिए जाने वाले एक मास के नोटिस के बदले में दी जाने वाली मजदूरी में असमानता पैदा होती है जो कि एक कर्मचारी द्वारा उसके नियोजन के दौरान वास्तव में और स्वीकृत रूप से प्राप्त की गई मजदूरी से अधिक है ।

---

[1] (1984) 4 एस. सी. सी. 356.

[2] (1980) 4 एस. सी. सी. 106.

10. तथापि, मैं **देवेन्द्र सलोलिया** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय को समान न्यायपीठ होने के आधार पर, अभिखंडित या अपास्त नहीं कर सकता क्योंकि यह सुस्थापित है कि समान न्यायपीठ यदि भिन्न मत व्यक्त करती है तब न्यायिक अनुशासन के लिए उसे उस मामले को प्राधिकृत निर्णय दिए जाने के लिए वृहत्तर न्यायपीठ को सौंप देना चाहिए । इसके अतिरिक्त माननीय उच्चतम न्यायालय का मत न्याय प्रशासन के हित में है कि विधि के उपबंध का निर्वचन किए जाने में असंगत मत नहीं दिया जाना चाहिए ।

11. परिणामतः, मैं इस मामले को माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा निम्न प्रश्न तय किए जाने के लिए प्रस्तुत करता हूं :–

> क्या अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन एक मास का नोटिस दिए जाने के बदले में संदेय मजदूरी वास्तव में संदत्त की जा रही मासिक मजदूरी है या दैनिक मजदूरी को 30 से गुणा करके निकाली गई 30 दिन की मजदूरी है क्योंकि अधिनियम, 1947 की धारा 25च(क) के अधीन दिए जाने वाले एक मास के नोटिस के आधार पर दी जाने वाली मजदूरी, कर्मचारी की छंटनी के पूर्व दी जाने वाली मजदूरी से अधिक है ?

12. इस मामले में समुचित कार्यवाही किए जाने के लिए संपूर्ण अभिलेख माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जाए ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

अस./क.

———————

भारत संचार निगम लि. और अन्य

बनाम

विनोद लखनपाल

तारीख 20 जुलाई, 2015

न्यायमूर्ति सुरेश्वर ठाकुर

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 115 और 151 – पुनरीक्षण आवेदन – बकाया किराए का संदाय करने में असफल रहने के आधार पर किराएदार की बेदखली के लिए वाद – वाद डिक्री होना – ऐसे निर्णय/डिक्री में मुद्रण संबंधी/लिपिकीय त्रुटि कारित होना – इस आधार पर बेदखली से बचने के लिए ऐसे निर्णय/डिक्री के विरुद्ध पुनरीक्षण आवेदन फाइल करना – आवेदन खारिज होना – विधि का यह सुस्थिर सिद्धांत है कि यदि किसी निर्णय/डिक्री में कोई मुद्रण संबंधी/लिपिकीय त्रुटि कारित हो जाती है तो उसमें संशोधन या सुधार के लिए उसी न्यायालय के समक्ष आवेदन करना चाहिए न कि किसी उच्चतर न्यायालय के समक्ष अपील/आवेदन करना चाहिए – यदि ऐसा किया जाता है तो वह अपील/आवेदन खारिज किए जाने योग्य होगा ।

वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन, विद्वान् किराया नियंत्रक (1), शिमला द्वारा 2013 के सिविल मामला सं. 7-10 में पारित तारीख 11 सितम्बर, 2014 के उस आक्षेपित आदेश के विरुद्ध फाइल किया गया है जिसके द्वारा उन्होंने किराया नियंत्रक (1), शिमला के उस आदेश के निष्पादन के विरुद्ध इस मामले में के आवेदक/निर्णीत ऋणी/किराएदार की ओर से संस्थित किए गए आक्षेपों को खारिज कर दिया था जिसे विद्वान् अपील प्राधिकारी द्वारा तारीख 26 अगस्त, 2013 को उपान्तरित कर दिया गया था । न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – आवेदन में प्रकथन के आमुख पर ही प्रलक्षित होता है जिसमें इस तथ्य को बढ़ा-चढ़ाकर प्रदर्शित किया गया है कि इसमें का आवेदक अगस्त, 2008 से तारीख 31 दिसम्बर, 2012 तक 6,000/- रुपए प्रतिमाह की दर से प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाया किराया संदाय करने में असफल रहा । इसके अतिरिक्त, आवेदक ने उक्त तथ्य का विरोध नहीं

किया जब उसने इसका उत्तर फाइल किया था । परिणामतः, जब इसमें के निर्णीत ऋणी और आवेदक को अगस्त, 2008 से 31 दिसम्बर, 2012 तक 6,000/- रुपए प्रतिमाह की दर से प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाए किराए की जानकारी हुई तो इसे आरम्भिक प्रक्रम पर ही संदाय करने की कार्यवाही करनी चाहिए थी क्योंकि इसी आधार पर प्रश्नगत परिसर से आवेदक की बेदखली के आदेश में इसकी व्याख्या की गई थी कि वह बकाया किराए का संदाय करने में असफल रहा है इसलिए उसे वैधतः अनुज्ञेय तरीके से प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाए किराए के संबंध में दायित्व को स्वीकार करना चाहिए था । इसके अतिरिक्त, प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाया किराया के संबंध में, दायित्व की स्वीकृति करते हुए उसे जमा करने के पूर्व, यह अच्छा होता कि उस अवधि के प्रारम्भ के बारे में किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग का वर्णन या उल्लेख किया जाता जिसे इसमें का आवेदक बकाया किराया का संदाय करने में असफल रहा था जिसे किराया नियंत्रक के समक्ष इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक को मुद्रण संबंधी/लिपिकीय भूल से उद्भूत त्रुटि में संशोधन करने के लिए समुचित आवेदन संस्थित करते हुए अगस्त, 2007 से बकाया रकम के बजाय अगस्त, 2008 से संगणना करते हुए, इसमें के निर्णीत ऋणी आवेदक से संबंधित प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाया किराया हेतु उसके दायित्व का आरम्भ मानने की सिफारिश की गई थी । यद्यपि, जब इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक ने अगस्त, 2008 से तारीख 31 दिसम्बर, 2012 तक 6,000/- रुपए प्रतिमाह की दर से प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाया किराया होने के तथ्य को छिपाया था तो उस अवधि को गठित करने वाले उक्त अवधि के बारे में उसकी उपमति, जिसके लिए किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में उद्भूत मुद्रण संबंधी/लिपिकीय त्रुटि के माध्यम से उसके दायित्व को अनजाने में अवधारित किया गया था वह त्रुटिपूर्वक अगस्त, 2007 से आरम्भ होना अवधारित हो गया था, बावजूद इसके इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक ने निर्णय का दुरुपयोग करते हुए, प्रश्नगत परिसर से बेदखली से बचने के लिए तत्काल ही किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में पूर्वोक्त मुद्रण संबंधी भूल की मौजूदगी में संशोधन करने के लिए किराया नियंत्रक के समक्ष एक आवेदन फाइल करना चाहिए था । इसमें का निर्णीत ऋणी/आवेदक ऐसा करने में असफल रहा, बजाय इसके, उसने किराया नियंत्रक के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध अपील प्राधिकारी के समक्ष एक अपील संस्थित कर दी मात्र इस उद्देश्य से

कि आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कि किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में उद्भूत पूर्वोक्त मुद्रण संबंधी त्रुटि मौजूद है । तथापि, किराया नियंत्रक के आदेश के विरुद्ध अपील प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत अपील में तारीख 26 अगस्त, 2013 को दिए आदेश के परिशीलन से यह प्रदर्शित होता है कि इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने किराया नियंत्रक के आदेशों के विरुद्ध अपील अभिगृहित करते समय, अपील प्राधिकारी को इस बात के लिए बाध्य किया था कि वह किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग के अनुतोष खंड में उद्भूत मुद्रण संबंधी/लिपिकीय भूल में संशोधन करने के पश्चात् इसका निपटारा करें क्योंकि प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाया किराया से संबंधित इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक का दायित्व गलत संगणना के कारण उस अवधि से आरम्भ होना गलत प्रदर्शित हुआ है जिस तारीख से इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक बकाया किराया संदाय करने के लिए दायी हैं । अपील प्राधिकारी द्वारा इसमें के आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदन को स्वीकार कर लिया और किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में मुद्रण संबंधी भूल, जैसा कि इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक की अगस्त, 2007 से तारीख 31 दिसम्बर, 2012 तक 6,000/- रुपए प्रतिमाह की दर से प्रश्नगत परिसर के बारे में इसमें के डिक्रीधारक/प्रत्यर्थी को किराया संदाय करना अभिनिर्धारित किया गया था, में सुधार करते हुए, इसे अगस्त, 2008 से तारीख 31 दिसम्बर, 2012 तक 6,000/- रुपए प्रतिमाह से आरम्भ होना अभिलिखित किया गया । अपील प्राधिकारी के समक्ष किराया नियंत्रक के आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत अपील में तर्क देते हुए, निर्णीत ऋणी/आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदनों से यह तथ्य प्रकट होता है कि किराया नियंत्रक के आदेश में मुद्रण संबंधी/लिपिकीय भूल घटित होने के अलावा लिपिकीय भूल से वह अवधि गलत तौर पर उपदर्शित हो गई है जिस तारीख से इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाए किराए का संदाय करने में असफल रहे थे, इसके अलावा, विद्वान् अपील प्राधिकारी के समक्ष कोई अन्य निवेदन नहीं किया गया था । अपील प्राधिकारी के समक्ष निर्णीत ऋणी/आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदन और उन पर दिए गए आदेशों से सहवर्ती तौर पर किराया नियंत्रक के आदेशों में प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाए किराए से संबंधित इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक के दायित्व के गलत संगणना के बारे में निर्णीत ऋणी/आवेदक की

जानकारी या जागरूकता प्रदर्शित होती है और मुद्रण संबंधी भूल से उद्भूत ऐसा तात्पर्यित गलत संगणना, जैसा कि उस अवधि के आरम्भ होने के बारे में इसमें गलत उपदर्शित हुआ है, जिस तारीख से निर्णीत ऋणी/आवेदक प्रश्नगत परिसर के बारे में, प्रत्यर्थी/डिक्रीधारक को बकाया किराया संदाय करने में असफल रहे थे । सुस्पष्टतः, जब आवेदक को किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में, लिपिकीय त्रुटि की मौजूदगी की जानकारी हुई थी तो निर्णीत ऋणी/आवेदक को प्रथमदृष्ट्या यह समुचित तरीका उपलब्ध था कि वह ऐसी मुद्रण संबंधी भूल में सुधार करने के लिए एक आवेदन फाइल करते । ऐसा करने में लोप करते हुए, उन्होंने जानबूझकर इसके अलावा, किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में मुद्रण संबंधी भूल को वर्णित करते हुए, अपील प्राधिकारी के समक्ष एक अपील संस्थित की ताकि इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक को प्रश्नगत परिसर के बारे में सम्पूर्ण बकाया किराया की अदायगी के उसके स्वीकृत दायित्व से बचाया जा सके जिसे अगस्त, 2008 से तारीख 31 दिसम्बर, 2012 तक गणना किए जाने के लिए किराया आवेदन में इसका उत्तर दिया जा सके । परिणामतः, प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाया किराया से संबंधित प्रत्यर्थी/डिक्रीधारक को संदाय करने के लिए निर्णीत ऋणी/आवेदक को जानकारी दी गई और जिसे विद्वान् किराया नियंत्रक के समक्ष पूर्ववर्ती में लोप किया गया था जब उस तारीख के आरम्भ होने के बारे में किराया नियंत्रक के आदेश में पूर्णतया गलत उपदर्शित हुआ था जिस तारीख से इसमें के डिक्रीधारक/प्रत्यर्थी को प्रश्नगत परिसरों के बारे में, निर्णीत ऋणी/आवेदक की बकाया किराया संदाय करने के दायित्व की संगणना की गई थी, में सुस्पष्टतः, संशोधन कर दिया गया था तो आवेदक के विद्वान् काउंसेल की इस दलील में कोई शक्ति या बल नहीं हो सकता कि तारीख, जब उक्त मुद्रण संबंधी भूल को अपील प्राधिकारी द्वारा विलम्बित तौर पर संशोधित कर दिया गया था तो 30 दिनों की अवधि, जिसके भीतर इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक बेदखली से बचने के लिए प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाए किराए से संबंधित अपने दायित्व को पूरा करना था, जिस तारीख से इसकी गणना की गई थी । उपर्युक्त निवेदन को स्वीकार करना उस अवधि को अननुज्ञेय तरीके से बढ़ाने या विस्तार करने की कोटि में आएगा, जिसके भीतर इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक, प्रश्नगत परिसर के बारे में इसके डिक्रीधारक/प्रत्यर्थी को बकाया किराया संदाय करने के दायित्व से आबद्ध थे । (पैरा 4)

पुनरीक्षण (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 163.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदकों की ओर से सर्वश्री अशोक शर्मा, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ अंग्रेज कपूर, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री भूपिन्दर गुप्ता, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ सुश्री चारु गुप्ता, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति सुरेश्वर ठाकुर – वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन, विद्वान् किराया नियंत्रक (1), शिमला द्वारा 2013 के सिविल मामला सं. 7-10 में पारित तारीख 11 सितम्बर, 2014 के उस आक्षेपित आदेश के विरुद्ध फाइल किया गया है जिसके द्वारा उन्होंने किराया नियंत्रक (1), शिमला के उस आदेश के निष्पादन के विरुद्ध इस मामले में के आवेदक/निर्णीत ऋणी/किराएदार की ओर से संस्थित किए गए आक्षेपों को खारिज कर दिया था जिसे विद्वान् अपील प्राधिकारी द्वारा तारीख 26 अगस्त, 2013 को उपान्तरित कर दिया गया था ।

2. अपील प्राधिकारी द्वारा अपील में उपान्तरित विद्वान् किराया नियंत्रक के आदेश के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि विवाद्यक सं. (i) पर निष्कर्ष, इसमें के मकान-मालिक-प्रत्यर्थी/डिक्रीधारक के पक्ष में निकाला गया था । तथापि, विद्वान् किराया नियंत्रक द्वारा विवाद्यक सं. (ii) और (iii) पर निष्कर्ष इसमें के डिक्रीधारक/प्रत्यर्थी के विरुद्ध अभिलिखित किया गया था । विवाद्यकों के साथ ही इन पर अभिलिखित निष्कर्ष, इसमें इसके पश्चात् उद्धृत किया जाता है :–

> "(i) क्या प्रत्यर्थी के पास तारीख 22 जुलाई, 2008 से किराया बकाया है, जैसा कि अभिकथित है ?
>
> (ii) क्या आवेदक को प्रश्नगत परिसर की भवन निर्माण के लिए सद्भाविक आवश्यकता है, जिसे परिसर खाली कराए बिना नहीं किया जा सकता है ?

(iii) क्या आवेदन को सद्भाविक आशय से फाइल किया गया है, जैसा कि अभिकथित है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

(iv) क्या आवेदन, पक्षकारों के असंयोजन के कारण दूषित है ?

(v) क्या आवेदन, कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?

(vi) अनुतोष ।

विवाद्यकों पर क्रमवार निष्कर्ष –

(i) हां

(ii) नहीं

(iii) हां

(iv) नहीं

(v) नहीं

(vi) आदेश के प्रवर्तित भाग के अनुसार, आवेदन भागतः मंजूर किया गया ।"

3. विद्वान् किराया नियंत्रक ने अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात्, यह निष्कर्ष निकाला कि निर्णीत ऋणी/इसमें के आवेदक/किराएदार ने अगस्त, 2007 से तारीख 31 दिसम्बर, 2012 तक का बकाया किराया अर्थात् 6,000/- रुपए प्रतिमाह का संदाय करने में असफल रहा जो संगणना करने पर कुल रकम 3,24,000/- रुपए होती है । इसमें के आवेदक/निर्णीत ऋणी को बकाए किराए के संदाय में असफल रहने के कारण प्रश्नगत परिसर से बेदखली से बचने के लिए वैधतः अनुज्ञेय तरीके से पूर्वोक्त रकम का संदाय, किराया नियंत्रक द्वारा आदेश में दिए गए तारीख से 30 दिन के भीतर इसमें के प्रत्यर्थी/डिक्रीधारक को करना था । तथापि, निर्णीत ऋणी/इसमें के आवेदक ऐसा करने में असफल रहे । भूमि विधि में यह सुस्थिर है कि 30 दिनों की कानूनी अवधि के भीतर जो किराया संदाय करने का दायित्व था, जैसा कि विद्वान् किराया नियंत्रक द्वारा निर्णीत ऋणी/इसमें के आवेदक के विरुद्ध अवधारित किया गया था जिसे वैधतः अनुज्ञेय तरीके से डिक्रीधारक/इसमें के प्रत्यर्थी को चुकाया जाना था, को न तो विस्तारित किया गया था न ही बढ़ाया गया था ।

परिणामतः, निर्णीत ऋणी/इसमें के आवेदक ने विद्वान् किराया नियंत्रक द्वारा आदेश में दिए गए तारीख से 30 दिनों की अवधि के भीतर डिक्रीधारक/इसमें के प्रत्यर्थी को प्रश्नगत परिसर के लिए बकाया किराए के बारे में अवधारित दायित्व को वैधतः अनुज्ञेय तरीके से निभाने में असफल रहा जिसके परिणामस्वरूप उसे प्रश्नगत परिसर से बेदखली का विधिक परिणाम भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए । इसमें के आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील देने की ईप्सा की है कि 30 दिनों की अवधि, जैसा कि विद्वान् किराया नियंत्रक के आदेश में समादेश दिया गया था, उसे किराएदार/निर्णीत ऋणी/इसमें के आवेदक द्वारा प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाया किराए को सुसंगत संविधि में वर्णित कानूनी निर्धारण के अधीन डिक्रीधारक/प्रत्यर्थी को संदाय करना था जिसे किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग के इस तथ्य द्वारा कारित त्रुटि के मौजूद रहने पर बढ़ाया या विस्तारित नहीं किया जा सकता है कि निर्णीत ऋणी/इसमें के आवेदक ने अगस्त, 2000 से तारीख 31 दिसम्बर, 2012 तक प्रश्नगत परिसर का बकाया किराया संदाय करने में असफल रहा जबकि जिस अवधि के बारे में सटीक वर्णन किया गया है, बकाया किराए का संदाय करने में इसमें का आवेदक असफल रहा, वह तारीख अगस्त, 2008 है । किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में उक्त त्रुटि की मौजूदगी, जो इसमें के आवेदक पर दायित्व अधिरोपित करती है, वह 30 दिनों के भीतर प्रश्नगत परिसरों के बारे में अवधारित बकाया किराया को जमा करना था, न्यायानुमत तौर पर अपवर्जित है और इसमें के आवेदक को 30 दिनों की कानूनी समादेश अवधि के भीतर पूर्वोक्त आदेश का अनुपालन करने से इसमें के आवेदक को अवरुद्ध करती है । इसके अतिरिक्त, काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपील प्राधिकरण ने 2013 की किराया अपील सं. 67-एस/14 का निपटारा करते समय इस मामले में के विद्वान् काउंसेल की दलील पर विचार करते हुए, किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में आवश्यक संशोधन किए जाने की अनुमति दी थी क्योंकि निर्णीत ऋणी इस मामले में के आवेदक पर प्रश्नगत परिसर के किराए की बकाया राशि जिस अवधि के लिए देय हुई थी उसकी गणना 2007 से नहीं अपितु 2008 से की गई थी । अन्त में, न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई कि किराया नियंत्रक के आदेश के विरुद्ध अपील किए जाने के समय अपील प्राधिकरण द्वारा किया गया उपर्युक्त संशोधन तथा उसके द्वारा निर्णीत ऋणी/इस मामले में

के आवेदक को यह निदेश देना कि वह डिक्रीधारकों को प्रश्नगत परिसर के 6,000/- रुपए प्रतिमास की दर से अगस्त, 2008 से 31 दिसम्बर, 2012 तक देय किराए की बकाया का भुगतान किए जाने से निर्मुक्त किया जाए, किराए की अवधि के विस्तार की कोटि में आता है जोकि विद्वान् किराया नियंत्रक द्वारा गलत निर्धारित की गई है । इसके अतिरिक्त, यह दलील दी गई है कि इस मामले में के आवेदक को 30 दिन की अवधि को, प्रश्नगत परिसर का किराया इस मामले में के आवेदक को 30 दिन की अवधि को, प्रश्नगत परिसर का किराया इस मामले में के प्रत्यर्थी को वैधतः अनुज्ञेय तरीके से संदाय के लिए गणना में लेना चाहिए ।

4. उपर्युक्त तर्क, जिसे इस न्यायालय के समक्ष अत्यधिक बलपूर्वक दिया गया है, आवेदन में प्रकथन के आमुख पर ही प्रलक्षित होता है जिसमें इस तथ्य को बढ़ा-चढ़ाकर प्रदर्शित किया गया है कि इसमें का आवेदक अगस्त, 2008 से तारीख 31 दिसम्बर, 2012 तक 6,000/- रुपए प्रतिमाह की दर से प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाया किराया संदाय करने में असफल रहा । इसके अतिरिक्त, आवेदक ने उक्त तथ्य का विरोध नहीं किया जब उसने इसका उत्तर फाइल किया था । परिणामतः, जब इसमें के निर्णीत ऋणी और आवेदक को अगस्त, 2008 से 31 दिसम्बर, 2012 तक 6,000/- रुपए प्रतिमाह की दर से प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाए किराए की जानकारी हुई तो इसे आरम्भिक प्रक्रम पर ही संदाय करने की कार्यवाही करनी चाहिए थी क्योंकि इसी आधार पर प्रश्नगत परिसर से आवेदक की बेदखली के आदेश में इसकी व्याख्या की गई थी कि वह बकाया किराए का संदाय करने में असफल रहा है इसलिए उसे वैधतः अनुज्ञेय तरीके से प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाए किराए के संबंध में दायित्व को स्वीकार करना चाहिए था । इसके अतिरिक्त, प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाया किराया के संबंध में, दायित्व की स्वीकृति करते हुए उसे जमा करने के पूर्व, यह अच्छा होता कि उस अवधि के प्रारम्भ के बारे में किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग का वर्णन या उल्लेख किया जाता जिसे इसमें का आवेदक बकाया किराया का संदाय करने में असफल रहा था जिसे किराया नियंत्रक के समक्ष इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक को मुद्रण संबंधी/लिपिकीय भूल से उद्भूत त्रुटि में संशोधन करने के लिए समुचित आवेदन संस्थित करते हुए अगस्त, 2007 से बकाया रकम के बजाय अगस्त, 2008 से संगणना करते हुए, इसमें के निर्णीत ऋणी/

आवेदक से संबंधित प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाया किराया हेतु उसके दायित्व का आरम्भ मानने की सिफारिश की गई थी । यद्यपि, जब इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक ने अगस्त, 2008 से तारीख 31 दिसम्बर, 2012 तक 6,000/- रुपए प्रतिमाह की दर से प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाया किराया होने के तथ्य को छिपाया था तो उस अवधि को गठित करने वाले उक्त अवधि के बारे में उसकी उपमति, जिसके लिए किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में उद्भूत मुद्रण संबंधी/लिपिकीय त्रुटि के माध्यम से उसके दायित्व को अनजाने में अवधारित किया गया था वह त्रुटिपूर्वक अगस्त, 2007 से आरम्भ होना अवधारित हो गया था, बावजूद इसके इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक ने निर्णय का दुरुपयोग करते हुए, प्रश्नगत परिसर से बेदखली से बचने के लिए तत्काल ही किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में पूर्वोक्त मुद्रण संबंधी भूल की मौजूदगी में संशोधन करने के लिए किराया नियंत्रक के समक्ष एक आवेदन फाइल करना चाहिए था । इसमें का निर्णीत ऋणी/आवेदक ऐसा करने में असफल रहा, बजाय इसके, उसने किराया नियंत्रक के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध अपील प्राधिकारी के समक्ष एक अपील संस्थित कर दी मात्र इस उद्देश्य से कि आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में उद्भूत पूर्वोक्त मुद्रण संबंधी त्रुटि मौजूद है । तथापि, किराया नियंत्रक के आदेश के विरुद्ध अपील प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत अपील में तारीख 26 अगस्त, 2013 को दिए आदेश के परिशीलन से यह प्रदर्शित होता है कि इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने किराया नियंत्रक के आदेशों के विरुद्ध अपील अभिगहीत करते समय, अपील प्राधिकारी को इस बात के लिए बाध्य किया था कि वह किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग के अनुतोष खंड में उद्भूत मुद्रण संबंधी/लिपिकीय भूल में संशोधन करने के पश्चात् इसका निपटारा करें क्योंकि प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाया किराया से संबंधित इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक का दायित्व गलत संगणना के कारण उस अवधि से आरम्भ होना गलत प्रदर्शित हुआ है जिस तारीख से इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक बकाया किराया संदाय करने के लिए दायी हैं । अपील प्राधिकारी द्वारा इसमें के आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदन को स्वीकार कर लिया और किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में मुद्रण संबंधी भूल, जैसा कि इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक की

अगस्त, 2007 से तारीख 31 दिसम्बर, 2012 तक 6,000/- रुपए प्रतिमाह की दर से प्रश्नगत परिसर के बारे में इसमें के डिक्रीधारक/प्रत्यर्थी को किराया संदाय करना अभिनिर्धारित किया गया था, में सुधार करते हुए, इसे अगस्त, 2008 से तारीख 31 दिसम्बर, 2012 तक 6,000/- रुपए प्रतिमाह से आरम्भ होना अभिलिखित किया गया । अपील प्राधिकारी के समक्ष किराया नियंत्रक के आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत अपील में तर्क देते हुए, निर्णीत ऋणी/आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदनों से यह तथ्य प्रकट होता है कि किराया नियंत्रक के आदेश में मुद्रण संबंधी/लिपिकीय भूल घटित होने के अलावा लिपिकीय भूल से वह अवधि गलत तौर पर उपदर्शित हो गई है जिस तारीख से इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाए किराए का संदाय करने में असफल रहे थे, इसके अलावा, विद्वान् अपील प्राधिकारी के समक्ष कोई अन्य निवेदन नहीं किया गया था । अपील प्राधिकारी के समक्ष निर्णीत ऋणी/आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदन और उन पर दिए गए आदेशों से सहवर्ती तौर पर किराया नियंत्रक के आदेशों में प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाए किराए से संबंधित इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक के दायित्व के गलत संगणना के बारे में निर्णीत ऋणी/आवेदक की जानकारी या जागरूकता प्रदर्शित होती है और मुद्रण संबंधी भूल से उद्भूत ऐसा तात्पर्यित गलत संगणना, जैसा कि उस अवधि के आरम्भ होने के बारे में इसमें गलत उपदर्शित हुआ है, जिस तारीख से निर्णीत ऋणी/आवेदक प्रश्नगत परिसर के बारे में, प्रत्यर्थी/डिक्रीधारक को बकाया किराया संदाय करने में असफल रहे थे । सुस्पष्टतः, जब आवेदक को किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में, लिपिकीय त्रुटि की मौजूदगी की जानकारी हुई थी तो निर्णीत ऋणी/आवेदक को प्रथमदृष्ट्या यह समुचित तरीका उपलब्ध था कि वह ऐसी मुद्रण संबंधी भूल में सुधार करने के लिए एक आवेदन फाइल करते । ऐसा करने में लोप करते हुए, उन्होंने जानबूझकर इसके अलावा, किराया नियंत्रक के आदेश के प्रवर्तित भाग में मुद्रण संबंधी भूल को वर्णित करते हुए, अपील प्राधिकारी के समक्ष एक अपील संस्थित की ताकि इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक को प्रश्नगत परिसर के बारे में सम्पूर्ण बकाया किराया की अदायगी के उसके स्वीकृत दायित्व से बचाया जा सके जिसे अगस्त, 2008 से तारीख 31 दिसम्बर, 2012 तक गणना किए जाने के लिए किराया आवेदन में इसका उत्तर दिया जा सके । परिणामतः,

प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाया किराया से संबंधित प्रत्यर्थी/डिक्रीधारक को संदाय करने के लिए निर्णीत ऋणी/आवेदक को जानकारी दी गई और जिसे विद्वान् किराया नियंत्रक के समक्ष पूर्ववर्ती में लोप किया गया था जब उस तारीख के आरम्भ होने के बारे में किराया नियंत्रक के आदेश में पूर्णतया गलत उपदर्शित हुआ था जिस तारीख से इसमें के डिक्रीधारक/प्रत्यर्थी को प्रश्नगत परिसरों के बारे में, निर्णीत ऋणी/आवेदक की बकाया किराया संदाय करने के दायित्व की संगणना की गई थी, में सुस्पष्टतः, संशोधन कर दिया गया था तो आवेदक के विद्वान् काउंसेल की इस दलील में कोई शक्ति या बल नहीं हो सकता कि तारीख, जब उक्त मुद्रण संबंधी भूल को अपील प्राधिकारी द्वारा विलम्बित तौर पर संशोधित कर दिया गया था तो 30 दिनों की अवधि, जिसके भीतर इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक बेदखली से बचने के लिए प्रश्नगत परिसर के बारे में बकाए किराए से संबंधित अपने दायित्व को पूरा करना था, जिस तारीख से इसकी गणना की गई थी । उपर्युक्त निवेदन को स्वीकार करना उस अवधि को अननुज्ञेय तरीके से बढ़ाने या विस्तार करने की कोटि में आएगा, जिसके भीतर इसमें के निर्णीत ऋणी/आवेदक, प्रश्नगत परिसर के बारे में इसके डिक्रीधारक/प्रत्यर्थी को बकाया किराया संदाय करने के दायित्व से आबद्ध थे ।

5. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, आवेदन खारिज किया जाता है, यदि कोई अन्य आवेदन लम्बित हैं, तो उन्हें भी खारिज किया जाता है । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया गया ।

अस./क.

———————

ओम देवी और अन्य

बनाम

कृष्ण कुमार और एक अन्य

तारीख 3 अगस्त, 2015

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1980 का 5) – धारा 100 और आदेश 27 का नियम 41 [सपठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 10 और 12] – कुर्की/विल्लंगम के अध्यधीन स्थावर सम्पत्ति के लिए विक्रय करार किया जाना – संपत्ति का निर्मुक्त होना – परिसीमा अवधि के भीतर करार निष्पादित नहीं कराना – विक्रय करार से इनकार करना – यदि कुर्की/विल्लंगम के अध्यधीन स्थावर सम्पत्ति के बारे में विक्रय करार किया जाता है तो क्रेता का यह दायित्व है कि वह उस सम्पत्ति को कुर्की/विल्लंगम के दायित्व से निर्मुक्त करवाए, ऐसा नहीं करने पर वह उस विक्रय करार का विनिर्दिष्ट पालन नहीं करवा सकता है और विक्रेता को उसे अभिखण्डित कराने का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाता है जिसके लिए वह विधि के अनुसार समुचित न्यायालय में आवेदन कर सकता है ।

वर्तमान मामले में, आवश्यक मुख्य तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थियों-वादियों ने अपीलार्थियों-प्रतिवादियों के विरुद्ध वर्ष 1991-92 के लिए जमाबंदी के अनुसार मोहल और मौजा भुंगतियाल, तहसील नूरपुर, जिला कांगड़ा में स्थित भूमि खेवट सं. 29, खतौनी सं. 68, खसरा सं. 471/1, माप 0-06-59 एच. एम. और खेवट सं. 30, खतौनी सं. 69 खसरा सं. 468 और 472, भूखंड सं. 2 माप 0-45-40 एच. एम. कुल भूमि माप 0-51-99 एच. एम. में समाविष्ट भूमि के विक्रय की संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन के माध्यम से कब्जे के लिए वाद फाइल किया है । वादियों के अनुसार, तारीख 20 सितम्बर, 1996 को पक्षकारों के बीच वाद भूमि का विक्रय करने के लिए 1,35,000/- रुपए के प्रतिफल के एवज में एक करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए हुआ था और प्रतिवादियों ने अग्रिम धनराशि के रूप में 20,000/- रुपए प्राप्त करने के पश्चात् उसका कब्जा वादियों को सौंप दिया था । इस बात पर सहमति हुई थी कि चूंकि वाद भूमि न्यायालय

आदेश के अधीन संबद्ध है, इसलिए, यह जैसे ही निर्मुक्त होती है, निर्मुक्ति आदेश होने के एक माह के भीतर इसका विक्रय विलेख उप-रजिस्ट्रार, नूरपुर के समक्ष रजिस्ट्रीकृत करा लिया जाएगा और अतिशेष रकम प्रतिवादी को संदत्त कर दी जाएगी । वाद भूमि तारीख 3 नवम्बर, 1997 को विद्वान् उप-न्यायाधीश (I), नूरपुर के आदेश प्रदर्श पी-2 द्वारा अवमुक्त कर दी गई थी, इस प्रकार, वादियों को इस आदेश के एक माह के भीतर प्रतिवादियों द्वारा अनुपालित होने के नाते विक्रय संविदा का विनिर्दिष्ट अनुपालन करवाने का अधिकार है । एक विधिक नोटिस, प्रतिवादियों को 7 दिनों की अवधि के भीतर विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए जारी की गई । इसे प्रतिवादियों द्वारा सम्यक् रूप से प्राप्त किया गया था । तथापि, तथ्य यह है कि विक्रय विलेख निष्पादित नहीं हुआ । वादी, संविदा के अपने भाग का अनुपालन करने के लिए तैयार और रजामंद थे किन्तु प्रतिवादी किसी एक या अन्य बहाने से इसका निष्पादन करने से बचते रहे । वाद का प्रतिवादियों द्वारा विरोध किया गया । प्रतिवादियों द्वारा इस बात से इनकार किया गया कि उन्होंने वाद भूमि का विक्रय करने के लिए 1,35,000/- रुपए के प्रतिफल में वादियों के साथ कोई करार किया था । उन्होने इस बात से भी इनकार किया कि अग्रिम धनराशि के रूप में 20,000/- रुपए प्राप्त करने के पश्चात् वाद भूमि का कब्जा वादियों को सौंप दिया था । तथापि, इस बात को स्वीकार किया कि वाद भूमि, संबद्ध थी । वादियों द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया । विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी (I), नूरपुर, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश ने तारीख 23 फरवरी, 1999 को विवाद्यक विरचित किए । उन्होंने तारीख 26 मई, 2003 को वाद खारिज कर दिया । वादियों ने तारीख 26 मई, 2003 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध विद्वान् जिला न्यायाधीश, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश के समक्ष एक अपील फाइल की । उन्होंने इसे तारीख 1 सितम्बर, 2006 को मंजूर कर लिया । अतएव, यह नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई । इस द्वितीय अपील को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वादियों ने 1,35,000/- रुपए के प्रतिफल के एवज में तारीख 20 सितम्बर, 1996 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के निष्पादन को सम्यक् रूप से साबित कर दिया है । 20,000/- रुपए पहले ही संदत्त कर दिए गए थे । उन्हें वाद भूमि का कब्जा दे दिया गया था । वाद को विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी (I), नूरपुर, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश

द्वारा मात्र इस एक आधार पर ही खारिज कर दिया गया था कि करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के खंड 4 के अनुसार, वादी, न्यायालय कुर्की से निर्मुक्त वाद भूमि प्राप्त करने के लिए अन्तर्वलित धन का संदाय करने के लिए आबद्ध थे और यह कि चूंकि वादियों ने ऐसा नहीं किया, इसलिए, वे विक्रय करार का विनिर्दिष्ट पालन कराने के हकदार नहीं रह गए । वादियों ने विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, नूरपुर द्वारा पारित तारीख 14 दिसम्बर, 1997 के निर्णय की प्रति और विद्वान् जिला न्यायाधीश, धर्मशाला द्वारा अपील में इसे खारिज करते हुए पारित तारीख 8 मार्च, 1982 के निर्णय की प्रति को अभिलेख पर रखने की उन्हें अनुज्ञा देने हेतु सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । प्रतिवादियों द्वारा आवेदन का विरोध किया गया । आवेदन को विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश द्वारा मंजूर कर लिया गया था और वादियों को विद्वान् जिला न्यायाधीश, धर्मशाला द्वारा 1980 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 13 में पारित तारीख 8 मार्च, 1982 के निर्णय की प्रति और विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, नूरपुर द्वारा पारित 14 दिसम्बर, 1979 के निर्णय की प्रति प्रदर्श पी. बी., निष्पादन आवेदन की प्रति प्रदर्श पी. सी. वर्ष 1975-76 के लिए जमाबंदी की प्रति, प्रदर्श पी. डी., वर्ष 1975-76 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी. ई., वर्ष 1996-97 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी. एफ., वर्ष 1996-97 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी. जी., मिसल हैकियत बंदोबस्त जदीद सनी की प्रति प्रदर्श पी एच और मिसल हैकियत बंदोबस्त जदीद सनी की प्रति प्रदर्श पी. जे. को अभिलेख पर रखने की अनुज्ञा प्रदान कर दी । प्रतिवादियों के विद्वान् अधिवक्ता ने विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष यह स्वीकार किया था कि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 8 मार्च, 1982 का निर्णय प्रदर्श पी. ए. अंतिम हो गया था इसलिए, उसके विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण फाइल नहीं किया गया था । विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, नूरपुर द्वारा पारित 14 दिसम्बर, 1979 के निर्णय के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि टोडरमल को पार्श्व कृषक के रूप में घोषित किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि डिक्री-धारक सुग्रीव को उससे विवादित रकम वसूल करने का कोई हक नहीं था । विद्वान् जिला न्यायाधीश, धर्मशाला द्वारा पारित तारीख 8 मार्च, 1982 को अंतिम हो जाने के पश्चात् कुर्की की प्रविष्टि मात्र औपचारिक प्रविष्टि थी ।

संपत्ति को तारीख 8 मार्च, 1982 के निर्णय के पश्चात् कुर्की में नहीं रखा जा सकता था । वादियों ने कुर्की से संपत्ति/वाद भूमि की निर्मुक्ति के लिए कोई आवेदन फाइल नहीं किया । इन परिस्थितियों में ही विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन आवेदन मंजूर कर लिया था । यह दोहराया जाता है कि जब एक बार टोडरमल रकम संदाय करने के दायित्व से मुक्त कर दिया गया है तो वाद भूमि की कुर्की के बारे में अधिकारों का पश्चात्वर्ती अभिलेख में प्रविष्टियां मात्र कागजी प्रविष्टियां ही रह गईं थीं क्योंकि वाद भूमि पर प्रभार या विल्लंगम तारीख 8 मार्च, 1982 का निर्णय प्रदर्श पी. ए. पारित होने के पश्चात् अस्तित्व में नहीं रह गया, इसलिए, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के पैरा 4 की बाधा निष्क्रिय हो गई । वादियों को यह अधिकार नहीं रह गया कि वे विक्रय विलेख निष्पादित कराएं । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के खंड 4 में ऐसा कोई सुझाव नहीं है कि यदि वादी प्रतिवादियों को 3,405.50 रुपए का संदाय नहीं करते हैं तो वादी विक्रय विलेख के निष्पादन की ईप्सा करने का हकदार नहीं रह जाते हैं । वादियों ने प्रतिवादियों को एक नोटिस प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी जारी किया था जिसकी डाक प्राप्ति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/सी है और इसकी अभिस्वीकृति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/डी है । किन्तु, प्रतिवादियों द्वारा नोटिस का कोई उत्तर नहीं दिया गया था । इसमें उपर्युक्त वर्णित तथ्यों से यह प्रकट होता है कि वादियों और प्रतिवादियों के बीच तारीख 20 सितम्बर, 1996 को एक करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए हुआ था । वाद भूमि को कुर्की से निर्मुक्त कर लिया गया था । प्रतिवादियों ने विधिक नोटिस प्राप्त करने और कुर्की से निर्मुक्त होने के बावजूद विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया, यद्यपि, उन्होंने अग्रिम धन के रूप में पहले ही 20,000/- रुपए प्राप्त कर लिए थे । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 20 सितम्बर, 1996 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के खंड 4 और 5 का सही तौर पर विवेचन किया है । तारीख 20 सितम्बर, 1996 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए को वादियों द्वारा अभि. सा. 2 राजेश कुमार, विलेख लेखक और अभि. सा. 3 जनक राज सूरी, पार्श्वसाक्षी को प्रस्तुत करते हुए, सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के अधीन आवेदन को वादियों द्वारा दस्तावेजों को अभिलेख पर रखने, जो मामले के समुचित न्यायनिर्णयन के लिए आवश्यक थे, की अनुज्ञा देते हुए विधि के अनुसार मंजूर किया गया है ।

प्रतिवादियों के लिए यह आवश्यक था कि कुर्की से संपत्ति निर्मुक्त कराने के पश्चात्, तारीख 20 सितम्बर, 1996 के करार के अनुसार विहित अवधि के भीतर निष्पादित विक्रय विलेख प्राप्त कर लेते । (पैरा 18, 19, 20 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2012] (2012) 8 एस. सी. सी. 148 :
भारत संघ बनाम **इब्राहिमउद्दीन और एक अन्य** ; 22

[2008] (2008) 8 एस. सी. सी. 511 :
नार्थ ईस्टर्न रेलवे एडमिनिस्ट्रेशन, गोरखपुर बनाम
भगवान दास । 21

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2006 की नियमित द्वितीय अपील सं. 434.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री अजय शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री के. डी. सूद, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ मुकुल सूद, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह नियमित द्वितीय अपील, विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश द्वारा 2003 की सिविल अपील सं. 75-एन/XIII में पारित तारीख 1 सितम्बर, 2006 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध निदेशित है ।

2. इस नियमित द्वितीय अपील का अधिनिर्णय करने के लिए आवश्यक मुख्य तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थियों-वादियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए "वादियों" कहा गया है) ने अपीलार्थियों-प्रतिवादियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए "प्रतिवादियों" कहा गया है) के विरुद्ध वर्ष 1991-92 के लिए जमाबंदी के अनुसार मोहल और मौजा भुंगतियाल, तहसील नूरपुर, जिला कांगड़ा में स्थित भूमि खेवट सं. 29, खतौनी सं. 68, खसरा सं. 471/1, माप 0-06-59 एच. एम. और खेवट सं. 30, खतौनी सं. 69 खसरा सं. 468 और 472, भूखंड सं. 2 माप 0-45-40 एच. एम. कुल भूमि माप 0-51-99 एच. एम. (जिसे इसमें इसके

पश्चात् सुविधा के लिए "वाद भूमि" कहा गया है) में समाविष्ट भूमि के विक्रय की संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन के माध्यम से कब्जे के लिए वाद फाइल किया है । वादियों के अनुसार, तारीख 20 सितम्बर, 1996 को पक्षकारों के बीच वाद भूमि का विक्रय करने के लिए 1,35,000/- रुपए के प्रतिफल के एवज में एक करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए हुआ था और प्रतिवादियों ने अग्रिम धनराशि के रूप में 20,000/- रुपए प्राप्त करने के पश्चात् उसका कब्जा वादियों को सौंप दिया था । इस बात पर सहमति हुई थी कि चूंकि वाद भूमि न्यायालय आदेश के अधीन संबद्ध है, इसलिए, यह जैसे ही निर्मुक्त होती है, निर्मुक्ति आदेश होने के एक माह के भीतर इसका विक्रय विलेख उप-रजिस्ट्रार, नूरपुर के समक्ष रजिस्ट्रीकृत करा लिया जाएगा और अतिशेष रकम प्रतिवादी को संदत्त कर दी जाएगी । वाद भूमि तारीख 3 नवम्बर, 1997 को विद्वान् उप-न्यायाधीश (I), नूरपुर के आदेश प्रदर्श पी-2 द्वारा अवमुक्त कर दी गई थी, इस प्रकार, वादियों को इस आदेश के एक माह के भीतर प्रतिवादियों द्वारा अनुपालित होने के नाते विक्रय संविदा का विनिर्दिष्ट अनुपालन करवाने का अधिकार है । एक विधिक नोटिस, प्रतिवादियों को 7 दिनों की अवधि के भीतर विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए जारी की गई । इसे प्रतिवादियों द्वारा सम्यक् रूप से प्राप्त किया गया था । तथापि, तथ्य यह है कि विक्रय विलेख निष्पादित नहीं हुआ । वादी, संविदा के अपने भाग का अनुपालन करने के लिए तैयार और रजामंद थे किन्तु प्रतिवादी किसी एक या अन्य बहाने से इसका निष्पादन करने से बचते रहे ।

3. वाद का प्रतिवादियों द्वारा विरोध किया गया । प्रतिवादियों द्वारा इस बात से इनकार किया गया कि उन्होंने वाद भूमि का विक्रय करने के लिए 1,35,000/- रुपए के प्रतिफल में वादियों के साथ कोई करार किया था । उन्होने इस बात से भी इनकार किया कि अग्रिम धनराशि के रूप में 20,000/- रुपए प्राप्त करने के पश्चात् वाद भूमि का कब्जा वादियों को सौंप दिया था । तथापि, इस बात को स्वीकार किया कि वाद भूमि, संबद्ध थी ।

4. वादियों द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया । विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी (I), नूरपुर, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश ने तारीख 23 फरवरी, 1999 को विवाद्यक विरचित किए । उन्होंने तारीख 26 मई, 2003 को वाद खारिज कर दिया ।

5. वादियों ने तारीख 26 मई, 2003 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध विद्वान् जिला न्यायाधीश, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश के समक्ष एक अपील फाइल की । उन्होंने इसे तारीख 1 सितम्बर, 2006 को मंजूर कर लिया । अतएव, यह नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई ।

6. यह नियमित द्वितीय अपील तारीख 11 जून, 2007 को निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्नों पर स्वीकार कर ली गई :–

> "(1) क्या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन अवैध और गलत आवेदन करने से विद्वान् निचले जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री दूषित हो जाती है ?
>
> (2) क्या दस्तावेज प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए, प्रदर्श के रूप में चिन्हित किए गए इसके सबूत के बिना और साक्ष्य के परिशीलन के बिना यह आक्षेपित निर्णय और डिक्री को दूषित कर देता है ?
>
> (3) क्या प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए, विशिष्टतया इसके खंड 4 और 5 को दोनों निचले न्यायालयों द्वारा गलत तौर पर परिशीलन और गलत मूल्यांकन किया गया है, जिसके द्वारा विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय दूषित हो जाता है और उस सीमा तक यह प्रतिवादियों के विरुद्ध हो जाता है ?"

7. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री अजय शर्मा ने विरचित विधि के सारवान् प्रश्नों के आधार पर यह जोरदार तर्क दिया कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन आवेदन को विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा गलत तौर पर मंजूर किया गया है । उसके बाद, उन्होंने यह दलील दी कि वादी, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए को साबित करने में असफल रहे हैं । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के खंड 4 और 5 का गलत परिशीलन किया गया है और गलत मूल्यांकन किया गया है ।

8. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री के. डी. सूद ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश द्वारा पारित तारीख 1 सितम्बर, 2006 के निर्णय और डिक्री का समर्थन किया है ।

9. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिवचनों, निर्णयों तथा अभिलेखों का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया ।

10. चूंकि, विधि के सभी सारवान् प्रश्न एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और संबंधित हैं इसलिए, साक्ष्यों की चर्चा की पुनरावृत्ति रोकने के लिए इनका अवधारण करने के लिए इन्हें एक साथ लिया जा रहा है ।

11. अभि. सा. 1 कृष्ण कुमार ने यह परिसाक्ष्य दिया कि वाद भूमि, पूर्व में टोडरमल, ओम देवी का पति, द्वारा धारित थी । वह मानसिक तौर पर बीमार था । प्रतिवादियों ने उसकी संपदा को उत्तराधिकार में प्राप्त किया था । ओम देवी, नूरपुर में रहती थी । वह बैंक में कार्य कर रही थी और प्रतिवादियों की भूमि की देखभाल कर रही थी । वे टोडरमल और उसकी माता की देखभाल करते थे और उनकी भूमि को जोतते थे । उन्होंने 1,35,000/- रुपए के प्रतिफल की एवज में प्रतिवादियों के साथ एक करार किया । उन्होंने करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के अनुसार, अग्रिम धनराशि के रूप में 20,000/- रुपए संदत्त किए । यह विलेख राजेश, दस्तावेज लेखक द्वारा लिखा गया था । उसने इसे प्रतिवादियों को पढ़कर सुनाया था और स्पष्टीकृत किया था । दस्तावेज पर उन सभी ने हस्ताक्षर किए थे और जनक सूरी तथा तारलोचन पार्श्वसाक्षी थे । इस बात पर भी सहमति हुई थी कि शेष रकम विक्रय विलेख के रजिस्ट्रीकरण के समय पर संदत्त की जानी थी । उसने यह भी कथन किया कि वे पहले से ही वाद भूमि के कब्जे में थे । उन्होंने प्रतिवादियों को विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए कहा किन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ । एक विधिक नोटिस प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के माध्यम से जारी की गई थी जिसकी डाक प्राप्ति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/सी है और अभिस्वीकृति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/डी है । वे संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद हैं ।

12. अभि. सा. 2 राजेश कुमार, दस्तावेज लेखक ने करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए को लिखा है । वह कार्य की अधिकता के कारण उसे रजिस्टर नहीं करा सका था, जनक राज सूरी विलेख का पार्श्वसाक्षी है । उसने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए पर अपने हस्ताक्षर को स्वीकार किया है । उसके अनुसार, इसे राजेश, टाइपिस्ट द्वारा टाइप किया गया था ।

13. अभि. सा. 4 नाथू राम, नम्बरदार ने यह परिसाक्ष्य दिया कि टोडरमल मानसिक तौर पर बीमार रहता था और ओम देवी नूरपुर में रहती थी । वाद भूमि की वादियों द्वारा देखभाल की जाती थी । वादी टोडरमल, और उसकी माता को भोजन उपलब्ध कराते थे तथा वाद संपत्ति के ऊपर वादियों का कब्जा था ।

14. वादियों ने टोडरमल की मृत्यु प्रमाणपत्र की प्रति प्रदर्श पी. एक्स. को अभिलेख पर रखा है, यह दर्शित करते हुए कि टोडरमल की मृत्यु तारीख 18 मार्च, 1996 को हुई थी । प्रदर्श पी-1, वाद भूमि की जमाबंदी की प्रति है और प्रदर्श पी-2, विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, नूरपुर द्वारा पारित तारीख 3 नवम्बर, 1997 के आदेश की प्रति है जिसके द्वारा वाद भूमि को कुर्की से अवमुक्त किया गया था ।

15. प्रतिवादी साक्षी 1, ओम देवी ने अपनी मुख्य परीक्षा में यह कथन किया है कि उसने वादियों के साथ कभी कोई करार नहीं किया । उस समय उसकी पुत्री शशि बाला की आयु मात्र 17 वर्ष थी । उसके अनुसार, वादियों ने कभी भी बंधक उन्मोचित नहीं करवाया और यहां तक कि उसे कभी भी कुर्की मामले में कोई रकम संदत्त नहीं की । वादियों ने 20,000/- रुपए संदत्त नहीं किए हैं । तथापि, मामले की वस्तुस्थिति यह है कि उसने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1 पर अपने हस्ताक्षर को स्वीकार किया । उसने यह भी स्वीकार किया कि जनक राज सूरी और तारलोचन सिंह पार्श्वसाक्षी थे और अभि. सा. 2 राजेश कुमार, दस्तावेज का लेखक है । दस्तावेजों की अन्तर्वस्तुओं को अभि. सा. 2 राजेश कुमार, दस्तावेज लेखक द्वारा पढ़कर सुनाई गई थी और स्पष्टीकृत की गई थी । उसने उस दिन साक्षियों की उपस्थिति में अग्रिम धन के रूप में 20,000/- रुपए प्राप्त किए थे । उसके अनुसार, प्रतिफल 2,35,000/- रुपए था न कि 1,35,000/- रुपए । उसने करार में यह उल्लेख नहीं किया था कि उसकी पुत्री अवयस्क है ।

16. अभि. सा. 3 शशि बाला, प्रतिवादी सं. 1 की पुत्री है । उसने वादियों के साथ कभी भी कोई करार नहीं किया । तथापि, उसने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए पर अपने हस्ताक्षर को स्वीकार किया है । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए में शशि बाला की आयु 20 वर्ष के रूप में दर्ज की गई है ।

17. प्रतिवादियों ने प्रमाणपत्र प्रदर्श डी-2 को साबित करने के लिए प्रतिवादी साक्षी 4, विजय कुमारी गुप्ता, प्रधान अध्यापिका, जी. पी. एस., नूरपुर के साथ ही प्रतिवादी साक्षी 5 निसरो देवी, जे. बी. टी. अध्यापिका की भी परीक्षा की । तथापि, वस्तुतः तथ्य यह है कि प्रतिवादी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के निष्पादन के समय पर शशि बाला की आयु 17 वर्ष थी । इसके अतिरिक्त, उपर्युक्त उल्लिखि करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के अनुसार, शशि बाला की आयु 20 वर्ष थी ।

18. वादियों ने 1,35,000/- रुपए के प्रतिफल के एवज में तारीख 20 सितम्बर, 1996 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के निष्पादन को सम्यक् रूप से साबित कर दिया है । 20,000/- रुपए पहले ही संदत्त कर दिए गए थे । उन्हें वाद भूमि का कब्जा दे दिया गया था । वाद को विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी (I), नूरपुर, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश द्वारा मात्र इस एक आधार पर ही खारिज कर दिया गया था कि करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के खंड 4 के अनुसार, वादी, न्यायालय कुर्की से निर्मुक्त वाद भूमि प्राप्त करने के लिए अन्तर्वलित धन का संदाय करने के लिए आबद्ध थे और यह कि चूंकि वादियों ने ऐसा नहीं किया, इसलिए, वे विक्रय करार का विनिर्दिष्ट पालन कराने के हकदार नहीं रह गए । वादियों ने विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, नूरपुर द्वारा पारित तारीख 14 दिसम्बर, 1997 के निर्णय की प्रति और विद्वान् जिला न्यायाधीश, धर्मशाला द्वारा अपील में इसे खारिज करते हुए पारित तारीख 8 मार्च, 1982 के निर्णय की प्रति को अभिलेख पर रखने की उन्हें अनुज्ञा देने हेतु सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । प्रतिवादियों द्वारा आवेदन का विरोध किया गया । आवेदन को विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश द्वारा मंजूर कर लिया गया था और वादियों को विद्वान् जिला न्यायाधीश, धर्मशाला द्वारा 1980 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 13 में पारित तारीख 8 मार्च, 1982 के निर्णय की प्रति और विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, नूरपुर द्वारा पारित 14 दिसम्बर, 1979 के निर्णय की प्रति प्रदर्श पी. बी., निष्पादन आवेदन की प्रति प्रदर्श पी. सी. वर्ष 1975-76 के लिए जमाबंदी की प्रति, प्रदर्श पी. डी., वर्ष 1975-76 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी. ई., वर्ष 1996-97 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी. एफ., वर्ष 1996-97 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी. जी., मिसल हैकियत बंदोबस्त जदीद सनी की प्रति प्रदर्श पी. एच. और मिसल हैकियत बंदोबस्त जदीद सनी की प्रति प्रदर्श पी. जे. को अभिलेख पर रखने की अनुज्ञा प्रदान कर दी । प्रतिवादियों के विद्वान् अधिवक्ता ने विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष यह स्वीकार किया था कि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 8 मार्च, 1982 का निर्णय प्रदर्श पी. ए. अंतिम हो गया था इसलिए, उसके विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण फाइल नहीं किया गया था । विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, नूरपुर द्वारा पारित तारीख 14 दिसम्बर, 1979 के निर्णय के

परिशीलन से यह दर्शित होता है कि टोडरमल को पार्श्व कृषक के रूप में घोषित किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि डिक्री-धारक सुग्रीव को उससे विवादित रकम वसूल करने का कोई हक नहीं था । विद्वान् जिला न्यायाधीश, धर्मशाला द्वारा पारित तारीख 8 मार्च, 1982 को अंतिम हो जाने के पश्चात् कुर्की की प्रविष्टि मात्र औपचारिक प्रविष्टि थी । संपत्ति को तारीख 8 मार्च, 1982 के निर्णय के पश्चात् कुर्की में नहीं रखा जा सकता था । वादियों ने कुर्की से संपत्ति/वाद भूमि की निर्मुक्ति के लिए कोई आवेदन फाइल नहीं किया । इन परिस्थितियों में ही विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन आवेदन मंजूर कर लिया था । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के आवेदन में वादियों द्वारा उद्भूत अभिवाक् वादपत्र से भिन्न नहीं था । तारीख 3 नवम्बर, 1997 का आदेश प्रदर्श पी-2 निम्नलिखित है :–

> "प्रत्यर्थी सुग्रीव सिंह ने यह कथन किया है कि उसने जे. डी. से 3,405.50 रुपए प्राप्त किए हैं और उसे इस बारे में कोई आपत्ति नहीं है कि यदि आवेदक का वर्तमान आवेदन मंजूर कर लिया जाता है । तद्नुसार, आवेदन मंजूर कर लिया गया और कुर्क संपत्ति अर्थात् भुंगतियाल, तहसील नूरपुर, जिला कांगड़ा में स्थित खाता सं. 23, खतौनी सं. 26, खसरा सं. 332, 340, 341, 346 माप 11 कनाल, 17 मरला और खतौनी सं. 31, खतौनी सं. 36, खसरा सं. 337, 338, 339, भूखंड सं. 3, माप 1 कनाल, 15 मरला कुल 13 कनाल, 12 मरला भूमि को निर्मुक्त करने का आदेश दिया गया ।"

19. यह दोहराया जाता है कि जब एक बार टोडरमल को रकम संदाय करने के दायित्व से मुक्त कर दिया गया है तो वाद भूमि की कुर्की के बारे में अधिकारों का पश्चात्वर्ती अभिलेख में प्रविष्टियां मात्र कागजी प्रविष्टियां ही रह गई थीं क्योंकि वाद भूमि पर प्रभार या विल्लंगम तारीख 8 मार्च, 1982 का निर्णय प्रदर्श पी. ए. पारित होने के पश्चात् अस्तित्व में नहीं रह गया, इसलिए, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के पैरा 4 की बाधा निष्क्रिय हो गई । वादियों को यह अधिकार नहीं रह गया कि वे विक्रय विलेख निष्पादित कराएं । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के खंड 4 में ऐसा कोई सुझाव नहीं है कि यदि वादी प्रतिवादियों को 3,405.50 रुपए का संदाय नहीं

करते हैं तो वादी विक्रय विलेख के निष्पादन की ईप्सा करने का हकदार नहीं रह जाते हैं । वादियों ने प्रतिवादियों को एक नोटिस प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी जारी किया था जिसकी डाक प्राप्ति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/सी है और इसकी अभिस्वीकृति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/डी है । किन्तु, प्रतिवादियों द्वारा नोटिस का कोई उत्तर नहीं दिया गया था ।

20. इसमें उपर्युक्त वर्णित तथ्यों से यह प्रकट होता है कि वादियों और प्रतिवादियों के बीच तारीख 20 सितम्बर, 1996 को एक करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए हुआ था । वाद भूमि को कुर्की से निर्मुक्त कर लिया गया था । प्रतिवादियों ने विधिक नोटिस प्राप्त करने और कुर्की से निर्मुक्त होने के बावजूद विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया, यद्यपि, उन्होंने अग्रिम धन के रूप में पहले ही 20,000/- रुपए प्राप्त कर लिए थे । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 20 सितम्बर, 1996 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए के खंड 4 और 5 का सही तौर पर विवेचन किया है । तारीख 20 सितम्बर, 1996 के करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए को वादियों द्वारा अभि. सा. 2 राजेश कुमार, विक्रय विलेख और अभि. सा. 3 जनक राज सूरी, पार्श्वसाक्षी को प्रस्तुत करते हुए, सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के अधीन आवेदन को वादियों द्वारा दस्तावेजों को अभिलेख पर रखने, जो मामले के समुचित न्यायनिर्णयन के लिए आवश्यक थे, की अनुज्ञा देते हुए विधि के अनुसार मंजूर किया गया है ।

21. **नार्थ ईस्टर्न रेलवे एडमिनिस्ट्रेशन, गोरखपुर** बनाम **भगवान दास**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अपील न्यायालय के पास अतिरिक्त साक्ष्य को मंजूर करने की शक्ति होती है, ऐसे साक्ष्य न केवल तब जब "निर्णय सुनाने के समर्थ होने के लिए" अपेक्षित होते हैं अपितु "किसी अन्य सारवान् हेतुक के लिए" भी अपेक्षित होते हैं । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "12. यद्यपि, साधारण नियम यह है कि साधारणतया अपील न्यायालय को निचले न्यायालय के अभिलेख से बाहर नहीं जाना चाहिए और अतिरिक्त साक्ष्य, चाहे मौखिक या दस्तावेजी हों, ग्रहण

[1] (2008) 8 एस. सी. सी. 511.

नहीं करना चाहिए । किन्तु, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 107 जो साधारण नियम का अपवाद कथित करती है, अपील न्यायालय को अतिरिक्त साक्ष्य लेने या ऐसे साक्ष्य का लिया जाना अपेक्षित हो, के लिए समर्थ बनाती है जो ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन हो, जैसा कि विहित की जाए । ये शर्तें, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 27 के अधीन विहित है । इसके बावजूद भी, अतिरिक्त साक्ष्य मात्र तभी ग्रहण किए जा सकते हैं जब परिस्थितियां, जैसी कि उक्त नियम में अनुध्यात हैं, मौजूद पाई जाती हैं । परिस्थितियां, जिनके अधीन अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं, निम्नलिखित हो सकती हैं –

> "(i) उस न्यायालय ने, जिसकी डिक्री की अपील की गई है, ऐसा साक्ष्य ग्रहण करने से इनकार कर दिया है जो ग्रहण किया जाना चाहिए था उप-नियम (1) का खंड (क) अथवा
>
> (ii) वह पक्षकार जो अतिरिक्त साक्ष्य पेश करना चाहता है यह सिद्ध कर देता है कि वह सम्यक् तत्परता का प्रयोग करने के बावजूद ऐसे साक्ष्य की जानकारी नहीं रखता था या उसे उस समय पेश नहीं कर सकता था जब वह डिक्री पारित की गई थी जिसके विरुद्ध अपील की गई है, 1976 के अधिनियम 104 द्वारा अंतःस्थापित खंड (कक) अथवा
>
> (iii) अपील न्यायालय किसी दस्तावेज के पेश किए जाने की या किसी साक्षी की परीक्षा की जाने की अपेक्षा या तो स्वयं निर्णय सुनाने के समर्थ होने के लिए या किसी अन्य सारवान् हेतुक के लिए करे, उप-नियम (1) का खंड (ख) ।"

15. पुनः के. वेंकटरमैय्या **बनाम** ए. सीतारामा रेड्डी और अन्य ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1526 वाले मामले में, इस न्यायालय के सांविधानिक न्यायपीठ ने **पुरुषोत्तम** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्वोक्त उल्लिखित मताभिव्यक्तियों को दोहराते समय, यह इंगित किया कि अपील न्यायालय के पास अतिरिक्त साक्ष्य ग्रहण करने की शक्ति होती है न केवल ऐसे साक्ष्य जब 'निर्णय सुनाने के समर्थ होने के लिए' अपेक्षित होते हैं अपितु 'किसी अन्य सारवान् हेतुक के लिए' भी अपेक्षित होते हैं । ऐसे मामले हो सकते हैं जहां यद्यपि न्यायालय का

यह निष्कर्ष होता है कि यह यथास्थिति अभिलेख के आधार पर निर्णय सुनाने के लिए समर्थ है और इसलिए, कठोरपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि अतिरिक्त साक्ष्य निर्णय सुनाने के समर्थ होने के लिए अपेक्षित है, इस पर न्याय के हित में विचार किया जाना हमेशा ही बना रहता है जिससे कि न्याय की सम्भावना की कमी को पूरा किया जा सके ताकि अत्यधिक समाधानप्रद तरीके से इसमें निर्णय सुनाया जा सके । इस प्रकार, यह प्रश्न कि क्या दस्तावेजों का परिशीलन करने के पश्चात् अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में ईप्सित करना अत्यधिक समाधानप्रद तरीके से निर्णय सुनाने के लिए आवश्यक होता है तो न्यायालय द्वारा गुणागुणों पर अपील की सुनवाई करते समय इस पर विचार किया जाता है ।

20. किसी भी दशा में, यदि न्यायालय अतिरिक्त दस्तावेजों को अपील में अत्यधिक समाधानप्रद तरीके से निर्णय सुनाने के लिए ग्रहण किया जाना ईप्सित समझता है तो वह इसके लिए आवेदन मंजूर कर सकता है और यदि मंजूर नहीं करता है तो वह आवेदन खारिज कर सकता है । जो कुछ भी हो, न्यायालय अपील में उसके समक्ष आने वाले आवेदन पर विचार करने लिए आबद्ध होता है । हम, इस प्रक्रम पर इससे अधिक नहीं कह सकते हैं क्योंकि पूर्वोक्त उल्लिखित आवेदनों पर उच्च न्यायालय द्वारा विधिक प्रास्थिति के प्रकाश में गुणागुणों के आधार पर अभी विचार किया जाना है, संक्षिप्ततः जो इसमें उपर्युक्त रूप में दिए गए हैं । उपर्युक्त उल्लिखित तथ्यात्मक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारी यह राय है कि आक्षेपित निर्णय और आदेश त्रुटिपूर्ण हैं और कायम नहीं रखे जा सकते हैं ।"

22. **भारत संघ** बनाम **इब्राहिमउद्दीन और एक अन्य**[1] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अतिरिक्त साक्ष्य की ग्राह्यता वर्तमान विवाद्यक या तथ्य की सुसंगतता पर निर्भर नहीं करती है चाहे आवेदक को पूर्ववर्ती प्रक्रम पर ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए अवसर दिया गया हो या नहीं, अपितु, यह अपील न्यायालय पर निर्भर करता है कि उसे "निर्णय सुनाने के समर्थ होने के लिए" अपेक्षित हैं या नहीं अथवा "किसी अन्य सारवान् हेतुक के लिए"

[1] (2012) 8 एस. सी. सी. 148.

अपेक्षित हैं या नहीं । इसलिए, सही परीक्षण यह है कि क्या अपील न्यायालय अतिरिक्त साक्ष्य, जो प्रस्तुत किए जाने ईप्सित हैं, पर विचार किए बिना अपने समक्ष मौजूद सामग्रियों के आधार पर निर्णय सुनाने में समर्थ है । जहां अतिरिक्त साक्ष्य, मामले में संदेह को मिटाने के लिए प्रस्तुत किए जाने ईप्सित हैं और साक्ष्य प्रत्यक्ष है और वाद में मुख्य विवाद्यक के लिए महत्वपूर्ण है और न्यायहित के लिए यह स्पष्टतः आज्ञापक है कि इसे अभिलेख पर अनुज्ञा के लिए मंजूर किया जा सकता है वहां ऐसे आवेदन मंजूर किए जा सकते हैं । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "38. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 27 के अधीन अपील न्यायालय को दस्तावेज को प्रस्तुत करने और साक्षी की परीक्षा करने को मंजूर करने की शक्ति होती है । किन्तु, उक्त न्यायालय की अपेक्षा उन मामलों में सीमित होती है जहां यह निर्णय सुनाने के लिए समर्थ बनाने के लिए ऐसे साक्ष्य लेने आवश्यक पाए जाते हैं । यह उपबंध अपील न्यायालय को अपीली प्रक्रम पर नए साक्ष्य लेने के लिए हकदार नहीं बनाता है जहां ऐसे साक्ष्य के बिना भी मामले में निर्णय सुनाया जा सकता है । यह अपील न्यायालय को विशिष्ट तरीके से निर्णय सुनाने के प्रयोजन के लिए ही नए साक्ष्य लेने के लिए हकदार बनाता है । दूसरे शब्दों में, यह साक्ष्य की कमी को समाप्त करने के लिए ही अपील न्यायालय को अतिरिक्त साक्ष्य ग्रहण करने की शक्ति देता है ।
>
> 47. जहां अतिरिक्त साक्ष्य, मामले में संदेह को मिटाने के लिए प्रस्तुत किए जाने ईप्सित हैं और साक्ष्य प्रत्यक्ष है और वाद में मुख्य विवाद्यक के लिए महत्वपूर्ण है और न्यायहित के लिए यह स्पष्टतः आज्ञापक है कि इसे अभिलेख पर अनुज्ञा के लिए मंजूर किया जा सकता है वहां ऐसे आवेदन मंजूर किए जा सकते हैं ।
>
> 49. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन आवेदन पर, गुणागुणों पर, अपील की सुनवाई के समय विचार किया जाता है ताकि, यह पता लगाया जा सके कि क्या दस्तावेज और या साक्ष्य, जिन्हें प्रस्तुत किया जाना ईप्सित है, में कोई सुसंगत/विवाद्यक अन्तर्वलित है । अतिरिक्त साक्ष्य की ग्राह्यता

वर्तमान विवाद्यक या तथ्य की सुसंगतता पर निर्भर नहीं करती है चाहे आवेदक को पूर्ववर्ती प्रक्रम पर ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए अवसर दिया गया हो या नहीं, अपितु, यह अपील न्यायालय पर निर्भर करता है कि उसे 'निर्णय सुनाने के समर्थ होने के लिए' अपेक्षित हैं या नहीं अथवा 'किसी अन्य सारवान् हेतुक के लिए' अपेक्षित हैं या नहीं । इसलिए, सही परीक्षण यह है कि क्या अपील न्यायालय अतिरिक्त साक्ष्य, जो प्रस्तुत किए जाने ईप्सित हैं, पर विचार किए बिना अपने समक्ष मौजूद सामग्रियों के आधार पर निर्णय सुनाने में समर्थ है । ऐसा अवसर मात्र तभी उद्भूत होता है यदि साक्ष्य की परीक्षा करने पर न्यायालय का यह निष्कर्ष निकलता है कि कुछ अन्तर्निहित त्रुटि या कमी न्यायालय को प्रकट होती है (देंखे – अर्जन सिंह और अन्य **बनाम** करतार सिंह और अन्य, ए. आई. आर. 1951 एस. सी. 193 तथा नाथा सिंह और अन्य **बनाम** वित्त आयुक्त, कराधान, पंजाब और अन्य, ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 1053 ।"

23. प्रतिवादियों के लिए यह आवश्यक था कि कुर्की से संपत्ति निर्मुक्त कराने के पश्चात्, तारीख 20 सितम्बर, 1996 के करार के अनुसार विहित अवधि के भीतर निष्पादित विक्रय विलेख प्राप्त कर लेते । तद्नुसार, विधि के सारवान् प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है ।

24. तद्नुसार, इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है, अतएव, इसे खारिज किया जाता है । प्रकीर्ण आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हों, का भी निपटारा किया जाता है । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

द्वितीय अपील खारिज की गई ।

क.

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी

बनाम

सुराम दास और अन्य

तारीख 3 दिसंबर, 2015

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 166 – प्रतिकर हेतु दावा याचिका – यदि याची ने यह साबित किया है कि ट्रक ड्राइवर के उतावलेपन से और उपेक्षापूर्वक ट्रक चलाने के कारण दुर्घटना घटी तथा चिकित्सा अधिकारी की रिपोर्ट के अनुसार याची के दाहिने और बाएं पैर का अस्थिभंग हुआ था तो अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी है ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 – धारा 166 – प्रतिकर हेतु दावा याचिका – अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया है कि आघाती यान के ड्राइवर के कब्जे में विधिमान्य ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था तो अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर देने के लिए बाध्य है ।

वर्तमान अपील का न्यायनिर्णयन करने के लिए "मूल तथ्यों" का विवरण दिया जाना आवश्यक है कि प्रत्यर्थी सं. 1-याची (इसमें इसके पश्चात् सुविधा की दृष्टिकोण से "याची" कहा गया है) ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन दावा याचिका फाइल की है । याची रोहरू से शिमला आ रही बस सं. एच पी 10 बी 7615 में यात्रा कर रहा था । उसी बीच में ट्रक जिसका रजिस्ट्रीकरण सं. एच आर 68 ए 0995 उतावलेपन से और उपेक्षापूर्वक चलाई जा रही थी, वह बस से टकरा गई । याची और अन्य यात्रियों को क्षतियां पहुंचीं । उसके दोनों दाहिने और बाएं पैरों पर गंभीर क्षतियां पहुंचीं जिसके कारण उसके पैरों का अस्थिभंग हुआ था । उसका सी. एच. सी. कोटखई पर उपचार हुआ था और उसके पश्चात् उसे आई. जी. एम. सी., शिमला भेजा गया था । वह 5,000/- रुपए कमाता था और दुर्घटना के पश्चात् वह विकलांग हो गया । उसे प्रतिकर के रूप में सात लाख रुपए दिए गए थे । प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 ने उत्तर फाइल किया । उनके अनुसार

दुर्घटना ट्रक ड्राइवर उतावलेपन से और उपेक्षापूर्वक ट्रक चलाने के कारण घटित हुई थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भी दर्ज की गई थी । एच. आर. टी. सी. के ड्राइवर द्वारा उत्तर प्रस्तुत किया गया था । उसने याची की आय के बारे में विवाद किया था । उसके अनुसार दुर्घटना ट्रक ड्राइवर के उतावलेपन से और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण घटित हुई थी । अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने भी उत्तर फाइल किया था । उसके अनुसार, ड्राइवर के पास ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था और याची की मासिक आय 5,000/- रुपए नहीं थी । याची को अत्यधिक क्षतियां नहीं पहुंची थीं । निचले अधिकरण द्वारा तारीख 6 अक्तूबर, 2009 को विवाद्यक विरचित किए गए थे और तारीख 6 मई, 2015 को सुधार किया गया । निचले अधिकरण ने प्रतिकर के रूप में तीन लाख दस हजार आठ सौ रुपए का अधिनिर्णय किया था । इसलिए, यह अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया । दो यानों के बीच एच. आर. टी. सी. बस सं. एच पी 10 बी 7615 तथा याची जिस बस में यात्रा कर रहा था और ट्रक सं. एच आर 68 ए 0995 जो सामने से आ रही थी, के शीर्ष आपस में टकरा गए थे । याची को कई क्षतियां पहुंचीं । उसे अस्पताल में भर्ती किया गया था और दुर्घटना 24 मई, 2007 को घटी । याची ने सम्यक् रूप से यह साबित किया है कि दुर्घटना ट्रक ड्राइवर द्वारा ट्रक को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने से घटी । (पैरा 6 और 7)

याची की आयु 58 वर्ष है । वह अभि. सा. 2 के रूप में पेश हुआ था । उसके अनुसार वह राजमिस्त्री के रूप में कार्य कर रहा था और 200-300 रुपए प्रतिदिन कमाता था । उसने अभि. सा. 3 सतन दास, चिकित्सा अधिकारी, एल. आर. वर्मा, अभि. सा. 4, डा. अनिता भटनागर, अभि. सा. 5 की परीक्षा कराई । अभि. सा. 4 डा. एल. आर. वर्मा के अनुसार याची के दोनों पैर की हड्डियों का अस्थिभंग हुआ था । वह तारीख 24 मई, 2007 से तारीख 1 जून, 2007 तक अस्पताल में भर्ती रहा । उसकी निर्योग्यता 52 प्रतिशत (देखिए प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 5/क) की सीमा तक आंकी गई थी । उसे शारीरिक दर्द के लिए 15,000/- रुपए की रकम और जीवन के सुख की हानि के लिए 15,000/- रुपए की रकम का संदाय किया गया था । उसके कमाने की सामर्थ्यता की हानि होने के वजह से नौ का गुणक

करके 2,80,000/- रुपए की रकम का उसके पक्ष में अधिनिर्णय किया गया था । अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया है कि आघाती यान का ड्राइवर के कब्जे में विधिमान्य ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था । याची द्वारा किए गए प्रकथन का खंडन नहीं किया गया था । (पैरा 8)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 का एफ. ए. ओ. (एम. वी. ए.) सं. 430.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री जे. एस. बग्गा

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह अपील 14/07 का एम. ए. सी. याचिका आर. बी. टी. सं. 25आर/2 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (iv) शिमला कैम्प रोहरू, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 8 मई, 2015 को पारित किए गए अधिनिर्णय के विरुद्ध संस्थित की गई है ।

2. वर्तमान अपील का न्यायनिर्णयन करने के लिए "मूल तथ्यों" का विवरण दिया जाना आवश्यक है कि प्रत्यर्थी सं. 1-याची (इसमें इसके पश्चात् सुविधा की दृष्टिकोण से "याची" कहा गया है) ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 166 के अधीन दावा याचिका फाइल की है । याची रोहरू से शिमला आ रही बस सं. एच पी 10 बी 7615 में यात्रा कर रहा था । उसी बीच में ट्रक जिसका रजिस्ट्रीकरण सं. एच आर 68 ए 0995 उतावलेपन से और उपेक्षापूर्वक चलाई जा रही थी, वह बस से टकरा गई । याची और अन्य यात्रीगण को क्षतियां पहुंचीं । उसके दोनों दाहिने और बाएं पैरों पर गंभीर क्षतियां पहुंचीं जिसके कारण उसके पैरों का अस्थिभंग हुआ था । उसका सी. एच. सी. कोटखई पर उपचार हुआ था और उसके पश्चात् उसे आई. जी. एम. सी., शिमला भेजा गया था । वह 5,000/- रुपए कमाता था और दुर्घटना के पश्चात् वह विकलांग हो गया । उसे प्रतिकर के रूप में सात लाख रुपए दिए गए थे ।

3. प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 ने उत्तर फाइल किया । उनके अनुसार दुर्घटना ट्रक ड्राइवर उतावलेपन से और उपेक्षापूर्वक ट्रक चलाने के कारण घटित हुई थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भी दर्ज की गई थी । एच. आर. टी. सी. के ड्राइवर

द्वारा उत्तर प्रस्तुत किया गया था । उसने याची की आय के बारे में विवाद किया था । उसके अनुसार दुर्घटना ट्रक ड्राइवर के उतावलेपन से और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण घटित हुई थी । अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने भी उत्तर फाइल किया था । उसके अनुसार, ड्राइवर के पास ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था और याची की मासिक आय 5,000/- रुपए नहीं थी । याची को अत्यधिक क्षतियां नहीं पहुंची थीं ।

4. निचले अधिकरण द्वारा तारीख 6 अक्तूबर, 2009 को विवाद्यक विरचित किए गए थे और तारीख 6 मई, 2015 को सुधार किया गया । निचले अधिकरण ने प्रतिकर के रूप में तीन लाख दस हजार आठ सौ रुपए का अधिनिर्णय किया था । इसलिए, यह अपील फाइल की गई ।

5. श्री जे. एस. बग्गा, अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी कि प्रश्नगत ट्रक के ड्राइवर के पास दुर्घटना के समय कोई विधिमान्य ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था । अधिकरण ने मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन नहीं किया । उसने यह भी दलील दी कि याची को यह साबित करने के लिए कोई पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया कि ड्राइवर के पास कोई विधिमान्य लाइसेंस नहीं था ।

6. मैंने अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया ।

7. दो यानों के बीच एच. आर. टी. सी. बस सं. एच पी 10 बी 7615 तथा याची जिस बस में यात्रा कर रहा था और ट्रक सं. एच आर 68 ए 0995 जो सामने से आ रही थी, के शीर्ष आपस में टकरा गए थे । याची को कई क्षतियां पहुंचीं । उसे अस्पताल में भर्ती किया गया था और दुर्घटना 24 मई, 2007 को घटी । याची ने सम्यक् रूप से यह साबित किया है कि दुर्घटना ट्रक ड्राइवर द्वारा ट्रक को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने से घटी ।

8. याची की आयु 58 वर्ष है । वह अभि. सा. 2 के रूप में पेश हुआ था । उसके अनुसार वह राजमिस्त्री के रूप में कार्य कर रहा था और 200-300 रुपए प्रतिदिन कमाता था । उसने अभि. सा. 3 सतन दास, चिकित्सा अधिकारी, एल. आर. वर्मा, अभि. सा. 4, डा. अनिता भटनागर, अभि. सा. 5 की परीक्षा कराई । अभि. सा. 4 डा. एल. आर. वर्मा के अनुसार याची के दोनों पैर की हड्डियों का अस्थिभंग हुआ था । वह तारीख 24 मई, 2007

से तारीख 1 जून, 2007 तक अस्पताल में भर्ती रहा । उसकी निर्योग्यता 52 प्रतिशत (देखिए प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 5/क) की सीमा तक आंकी गई थी । उसे शारीरिक दर्द के लिए 15,000/- रुपए की रकम और जीवन के सुख की हानि के लिए 15,000/- रुपए की रकम का संदाय किया गया था । उसके कमाने की सामर्थ्यता की हानि होने के वजह से नौ का गुणक करके 2,80,000/- रुपए की रकम का उसके पक्ष में अधिनिर्णय किया गया था । अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया है कि आघाती यान का ड्राइवर के कब्जे में विधिमान्य ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था । याची द्वारा किए गए प्रकथन का खंडन नहीं किया गया था ।

2015 का सी. एम. पी. सं. 11529

9. अपीलार्थी ने अतिरिक्त साक्ष्य पेश करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, के नियम 27 के अधीन आवेदन फाइल किया । अपीलार्थी को याचिका के लंबित रहने के दौरान लाइसेंस प्राधिकारी से सत्यापन रिपोर्ट प्राप्त करने के लिए सतर्क रहना चाहिए था । अपीलार्थी-बीमा कंपनी को साक्ष्य पेश करने के लिए तारीख 6 मई, 2015 को अन्तिम अवसर दिया गया था । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अधीन आवेदन मामले की कमी को पूरा करने के प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है । ड्राइविंग लाइसेंस की प्रति प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 1/क है ।

2015 का एफ. ए. ओ. सं. 430

10. इसमें ऊपर प्रकट चर्चा और विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए अपील में कोई गुणागुण प्रतीत नहीं होता है और उसे खारिज किया जाता है । यदि कोई लंबित आवेदन है तो उनका भी निपटारा किया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया गया ।

अपील खारिज की गई ।

आर्य

रमेश चन्द

बनाम

मनोहर सिंह और अन्य

तारीख 25 मई, 2016

न्यायमूर्ति अजय मोहन गोयल

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 और आदेश 39 – प्रश्नगत भूखंड का विक्रय – विक्रय करार के अनुसरण में न तो कब्जा लेना न ही राजस्व अभिलेखों में नाम अभिलिखित कराना – विक्रय करार का संदिग्ध और अविश्वसनीय पाया जाना – स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की मांग करना – मांग नामंजूर होना – यदि प्रश्नगत भूखंड को एक विक्रय करार द्वारा क्रय किया जाता है तो उसके अनुसरण में नामांतरण और कब्जा प्राप्त करना आवश्यक होता है अन्यथा विक्रय करार संदिग्ध और अविश्वसनीय समझा जाएगा जब तक कि इसे सभी प्रकार के संदेहों से परे साबित नहीं कर दिया जाता है तब तक उसके आधार पर स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री मंजूर करने का प्रश्न ही नहीं उद्‌भूत होता है ।

वर्तमान मामले में, आवश्यक तथ्य यह हैं कि अपीलार्थी-वादी ने वाद भूमि पर कब्जा विषयक अधिकारों पर अपने शान्तिपूर्वक धारण करने में किसी भी तरीके से चाहे, जो भी हो हस्तक्षेप/अधिक्रमण करने से शाश्वत तौर पर प्रतिवादियों को अवरुद्ध करने के लिए स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री मंजूर करने की प्रार्थना करते हुए एक वाद फाइल किया था । उनके द्वारा स्थापित मामला यह था कि प्रतिवादियों के हित-पूर्वाधिकारी स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह ठाकुर ने वर्ष 1993 में अपने कुल 26 भूखंडों में से भूखंड सं. 5 का विक्रय करने के लिए 1,20,000/- रुपए के प्रतिफल में उसके (वादी) उसके साथ एक करार किया था और इसके बदले में तारीख 16 जून, 1993 को एक करार निष्पादित किया था । उक्त श्री गुलाब सिंह ठाकुर, पुराने राजस्व अभिलेख और खाता/खतौनी सं. 515/574, खसरा सं. 143, 144, 145 और 146 माप 6-13 बीघा के अनुसार, नवीनतम खेवट/खतौनी सं. 45/84, खसरा सं. 416, 417, 525, 526 और 527, माप 4982.66 वर्ग मीटर में समाविष्ट भूमि पर कब्जे के सभी अधिकार रखते हुए अधिकारों के अभिलेख में गैर

मौरूसी के रूप में अभिलिखित था । स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह ठाकुर ने पूर्वोक्त भूमि को भूखंडों में विभाजित किया था और 26 भूखंड बांटे थे और उनके बारे में नगर और ग्राम योजना विभाग से मंजूरी प्राप्त कर ली थी और तारीख 16 जून, 1993 के करार के माध्यम से उसने भूखंड सं. 5 माप 160.75 मीटर अर्थात् 16.44 × 8.22 × 17.81 × 9.59 वर्ग मीटर का विक्रय वादी को किया था और उसका भौतिक कब्जा विक्रय प्रतिफल का संपूर्ण और अंतिम संदाय प्राप्त करने के पश्चात् तत्काल ही वादी को सौंप दिया था । वादी के अनुसार, उक्त करार की तारीख से, वह बिना किसी हस्तक्षेप से उक्त भूखंड के कब्जे में है । जब वादी ने उक्त भूखंड पर अपने गृह का निर्माण कार्य करना आरंभ किया तो प्रतिवादियों ने उसे हड़पने का आशय रखते हुए, उसे निर्माण कार्य करने से मना कर दिया । तारीख 30 नवंबर, 2001 को कतिपय महिलाओं ने बाधा कारित किया, वे घटनास्थल पर आईं जबकि वादी का निर्माण कार्य चल रहा था । उसने यह भी प्रकथन किया कि न तो प्रतिवादियों का, न ही उनके कुटुंब सदस्यों का वाद भूमि के ऊपर कोई अधिकार, हक या हित था और तद्नुसार, इस पृष्ठभूमि में, उसने वादपत्र में उल्लिखित निबंधनों में स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए एक वाद फाइल किया । अपने लिखित कथन में, प्रतिवादियों ने यह कथन किया कि स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह और बाबू राम वाद भूमि में बराबर हिस्सेदारी रखते हुए गैर मौरूसी अभिधारी के रूप में अभिलिखित थे और वर्ष 1999 में ही श्री बाबू राम ने अपने हिस्से को स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह के पक्ष में छोड़ दिया था और उसका नामांतरण भी तारीख 16 अप्रैल, 1999 को अनुप्रमाणित हो गया था । प्रतिवादियों के अनुसार स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह वर्ष 1993 में वाद भूमि के आधे हिस्से के कब्जे में थे इसलिए वे न तो उस भूखंड को विभाजित करने या विक्रय करने के लिए सक्षम थे न ही वे नगर और ग्राम योजना विभाग से इसकी मंजूरी लेने के लिए सक्षम थे । प्रतिवादियों ने इस बात से इनकार किया कि कोई करार स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह द्वारा वादी के साथ निष्पादित हुआ था । उन्होंने यह भी प्रकथन किया कि अन्यथा भी, गुलाब सिंह विक्रय करार करने के लिए विधिक तौर पर सक्षम नहीं थे । उन्होंने वादी को वाद भूमि का भौतिक कब्जा सौंपने के तथ्य से भी इनकार किया और प्रतिवादियों के अनुसार वे वाद भूमि के कब्जे में है । इन आधारों पर उन्होंने वादी के दावे से इनकार किया । तद्नुसार, वादी का वाद खारिज कर दिया गया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी ने स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह प्रतिवादियों के पिता

द्वारा तारीख 16 जून, 1993 को 1,20,000/- रुपए के प्रतिफल में निष्पादित करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए के आधार पर भूखंड सं. 5 पर अपने कब्जाधारी विषयक अधिकारों के आधार पर स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए वाद फाइल किया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी द्वारा अपने कथन में यह स्वीकार किया गया है कि अपने कब्जे की तारीख तक यह किसी राजस्व अभिलेख में अभिलिखित नहीं था । अभि. सा. 6, जय पाल चौहान, पटवारी ने भी स्पष्टत: यह स्वीकार किया है कि राजस्व अभिलेखों के अनुसार प्रतिवादी वाद भूमि के कब्जे में है । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय से यह सुस्पष्ट होता है कि वादी ने अपने कथन में यह स्वीकार किया था कि यद्यपि करार वर्ष 1993 में निष्पादित हुआ था और प्रतिवादियों के पिता की मृत्यु वर्ष 1998 में हुई थी, तथापि, इस अवधि के दौरान वादी ने संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए कोई वाद फाइल नहीं किया न ही उसने श्री गुलाब सिंह ठाकुर के विरुद्ध रकम वसूली के लिए कोई नोटिस इत्यादि या कोई वाद फाइल किया । विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला कि यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी वाद भूमि अर्थात् भूखंड 5 के कब्जे में है और वादी उस पर अपने कब्जे को साबित करने में असफल रहा है और इस प्रकार, वादी द्वारा फाइल वाद खारिज किया जाता है । प्रथम अपील न्यायालय ने, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को कायम रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि अभिलेख पर के साक्ष्य से यह परिणाम नहीं निकलता है कि वादी, वस्तुतः करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए के निष्पादन के पश्चात् भूखंड सं. 5 के कब्जे में था । इसके बजाय, कब्जा भूमि के स्वामियों के पास होना प्रतीत होता है । यह भी अभिनिर्धारित किया कि भूखंड सं. 5 का हक या कब्जा वादी में निहित नहीं हुआ है और यह कि उस पर प्रतिवादियों का कब्जा है । यह भी अभिनिर्धारित किया कि कोई व्यक्ति संपूर्ण विश्व के विरुद्ध व्यादेश का दावा कर सकता है, सिवाय सही स्वामियों के विरुद्ध । इन आधारों पर, यह निष्कर्ष निकलता है कि विद्वान् विचारण न्यायालय, वादी के वाद को खारिज करने में न्यायानुमत था क्योंकि वादी वाद भूमि के ऊपर अपने कब्जे को साबित करने में असफल रहा है । इससे व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय द्वारा विरचित विधि के सारवान् प्रश्न को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय सर्वप्रथम करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए के दोनों

अनुप्रमाणक साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 2 काली कुमार और अभि. सा. 3 अनिल डोगरा के कथनों पर विचार किया । अभि. सा. 2 अनिल कुमार के अनुसार, तारीख 16 जून, 1993 को गुलाब सिंह ने वादी के साथ एक करार निष्पादित किया था और उसके अनुसार, भूखंड का कब्जा पहले ही वादी को गुलाब सिंह द्वारा दिया जा चुका था । उसकी प्रतिपरीक्षा के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि उसने इसमें यह उल्लिखित किया है कि प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए को उसके उस पर हस्ताक्षर करने से पहले ही तैयार किया जा चुका था और वह यह नहीं कह सकता है कि किसने उसे टंकित किया था । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि उसने उस दिन को ही गुलाब सिंह को देखा था । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह भी उल्लेख किया है कि वह घटनास्थल पर नहीं गया था, इसलिए, वह यह नहीं कह सकता है कि कौन वाद संपत्ति के कब्जे में है । इसी प्रकार, अभि. सा. 3 अनिल डोगरा ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह भी स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह और वादी के बीच हुए करार का एक साक्षी है । उसने इस सुझाव को स्वीकार किया है कि वह वाद भूमि पर नहीं गया है । इनके अलावा, अभि. सा. 4 एन. एस. चौहान ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वर्ष 1993 में वादी ने गुलाब सिंह से वाद भूमि क्रय की थी और यह कि गुलाब सिंह ने करार निष्पादित होने के पूर्व ही वादी को भूखंड सं. 5 का कब्जा सौंप दिया था । अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसने यह कथन किया है कि उसकी उपस्थिति में कोई संदाय नहीं किया गया था और उसके समक्ष करार निष्पादित नहीं हुआ था । उसने यह भी कथन किया कि वह यह नहीं जानता है कि कब वादी को वाद भूमि का कब्जा दिया गया था क्योंकि वह उस समय मौजूद नहीं था जब वादी को कब्जा सौंपा गया था । इस पृष्ठभूमि में, न्यायालय वादी (अभि. सा. 1) वादी के कथन की परीक्षा करेंगे । उसके अनुसार, करार 1,20,000/- रुपए के प्रतिफल की रकम में तारीख 16 जून, 1993 को निष्पादित हुआ था । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि करार में सहमति के अनुसार संदाय प्राप्त किया था और उसके बाद उसने उसे वाद भूमि का कब्जा सौंपा था । अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसने यह स्वीकार किया है कि भूमि की स्वामी सरकार थी और स्वर्गीय गुलाब सिंह गैर मौरूसी था । उसने यह भी स्वीकार किया कि बाबू राम, गुलाब सिंह का भाई भी गैर मौरूसी के रूप में अभिलिखित था । दुर्भाग्यपूर्ण तौर पर, उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि उसे यह याद नहीं है कि किसने करार टंकित किया है क्योंकि उसने उसे टंकित दशा में गुलाब

सिंह से प्राप्त किया था । उसने यह स्वीकार किया कि गुलाब सिंह के जीवनकाल के दौरान, उसने विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए उस पर कभी भी दबाव नहीं बनाया, न ही उसने उसके विरुद्ध वसूली के लिए कोई वाद फाइल किया । उसने यह भी स्वीकार किया कि आज की तारीख तक किसी भी राजस्व अभिलेख में इस भूमि पर उसका कब्जा प्रविष्ट नहीं हुआ है । साक्षियों के अभिसाक्ष्यों में से एक और साक्षी अर्थात् श्री करम चंद के साक्ष्य का भी परिशीलन किया जा सकता है । अपने कथन में, श्री करम सिंह ने यह कथन किया है कि जून, 1993 में, गुलाब सिंह ने वादी को वाद भूमि का कब्जा सौंपा था और इसके पश्चात्, वर्ष 2000 में वादी और प्रतिवादी इत्यादि पुनः घटनास्थल पर गए थे और प्रतिवादियों ने वादी को वाद भूमि का कब्जा सौंपा था । न्यायालय के सुविचारित मत में, उपर्युक्त साक्षियों के कथनों से ऐसा कोई विश्वास पैदा नहीं होता है कि कभी भी मृतक श्री गुलाब सिंह द्वारा वादी को वाद भूमि का कब्जा सौंपा गया था । वस्तुतः, इन साक्षियों के कथनों में अत्यधिक विरोधाभास हैं । जबकि एक साक्षी ने यह कथन किया है कि वाद भूमि का कब्जा, विक्रय करार निष्पादित होने के पूर्व ही गुलाब सिंह द्वारा वादी को सौंप दिया गया था, यह वादी के अभिसाक्ष्य के प्रतिकूल है । जहां तक विक्रय करार के साक्षियों का संबंध है, उनमें से कोई भी घटनास्थल पर नहीं गया है और उन्होंने स्पष्टतः यह कथन किया है कि वे यह कहने की दशा में नहीं हैं कि कौन वास्तव में, वाद भूमि के कब्जे में है । इसके अतिरिक्त, वादी ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि वाद भूमि पर उसका कब्जा किसी राजस्व अभिलेख में प्रविष्ट नहीं है । इसके प्रतिकूल, प्रतिवादियों ने सफलतापूर्वक यह साबित कर दिया है कि वे वास्तव में, वाद संपत्ति के कब्जे में है और यह उन राजस्व अभिलेखों से भी प्रकट होता है, जिनसे प्रतिवादियों का वाद संपत्ति में कब्जा प्रलक्षित होता है । (पैरा 17, 18, 19, 20, 21, 22 और 23)

सिविल (अपीली) अधिकारिता : 2006 की नियमित द्वितीय अपील सं. 37.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री आर. के. बावा, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ अजय शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 की ओर से श्री टेक चंद शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 5 की ओर से श्री वी. एस. चौहान अपर महाधिवक्ता

न्यायमूर्ति अजय मोहन गोयल – वर्तमान अपील, विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला द्वारा 2004 की सिविल अपील सं. 105-एस/13 में पारित तारीख 10 अक्तूबर, 2005 के निर्णय और डिक्री तथा विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, न्यायालय सं. 1, शिमला द्वारा 2001 के मामला सं. 94/1 में पारित तारीख 1 जुलाई, 2003 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है ।

2. अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए एक वाद फाइल किया था जिसे विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 1 जुलाई, 2003 को खारिज कर दिया गया था और उक्त खारिज किए गए निर्णय के विरुद्ध उसके द्वारा फाइल अपील को भी प्रथम अपील न्यायालय द्वारा तारीख 18 अक्तूबर, 2005 के अपने निर्णय द्वारा नामंजूर कर दिया गया था । इसलिए, उक्त दोनों निर्णयों से व्यथित होकर अपीलार्थी-वादी ने वर्तमान नियमित द्वितीय अपील फाइल की है ।

3. यह अपील तारीख 1 सितंबर, 2006 को निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्न पर स्वीकार कर ली गई थी :–

> "1. क्या दोनों निचले न्यायालयों ने स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए अपीलार्थी के दावे को खारिज करने में गंभीर अवैधता कारित की है, इस तथ्य के बावजूद कि करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए में यह स्पष्टतः अभिलिखित है कि अपीलार्थी-वादी को प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों के हित-पूर्वाधिकारी कब्जे में रखा गया था ?"

4. संक्षेप में, अपील का न्यायनिर्णयन करने के लिए आवश्यक तथ्य यह है कि अपीलार्थी-वादी ने वाद भूमि पर कब्जा विषयक अधिकारों पर अपने शान्तिपूर्वक धारण करने में किसी भी तरीके से चाहे, जो भी हो हस्तक्षेप/अधिक्रमण करने से शाश्वत तौर पर प्रतिवादियों को अवरुद्ध करने के लिए स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री मंजूर करने की प्रार्थना करते हुए एक वाद फाइल किया था । उनके द्वारा स्थापित मामला यह था कि प्रतिवादियों के हित-पूर्वाधिकारी स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह ठाकुर ने वर्ष 1993 में अपने कुल 26 भूखंडों में से भूखंड सं. 5 का विक्रय करने के लिए 1,20,000/- रुपए के प्रतिफल में उसके (वादी) साथ एक करार किया था और इसके बदले में

तारीख 16 जून, 1993 को एक करार निष्पादित किया था । उक्त श्री गुलाब सिंह ठाकुर, पुराने राजस्व अभिलेख और खाता/खतौनी सं. 515/574, खसरा सं. 143, 144, 145 और 146 माप 6-13 बीघा के अनुसार, नवीनतम खेवट/ खतौनी सं. 45/84, खसरा सं. 416, 417, 525, 526 और 527, माप 4982.66 वर्ग मीटर में समाविष्ट भूमि पर कब्जे के सभी अधिकार रखते हुए अधिकारों के अभिलेख में गैर मौरूसी के रूप में अभिलिखित था ।

5. स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह ठाकुर ने पूर्वोक्त भूमि को भूखंडों में विभाजित किया था और 26 भूखंड बांटे थे और उनके बारे में नगर और ग्राम योजना विभाग से मंजूरी प्राप्त कर ली थी और तारीख 16 जून, 1993 के करार के माध्यम से उसने भूखंड सं. 5 माप 160.75 मीटर अर्थात् 16.44 × 8.22 × 17.81 × 9.59 वर्ग मीटर का विक्रय वादी को किया था और उसका भौतिक कब्जा विक्रय प्रतिफल का संपूर्ण और अंतिम संदाय प्राप्त करने के पश्चात् तत्काल ही वादी को सौंप दिया था ।

6. वादी के अनुसार, उक्त करार की तारीख से, वह बिना किसी हस्तक्षेप से उक्त भूखंड के कब्जे में है । जब वादी ने उक्त भूखंड पर अपने गृह का निर्माण कार्य करना आरंभ किया तो प्रतिवादियों ने उसे हड़पने का आशय रखते हुए, उसे निर्माण कार्य करने से मना कर दिया । तारीख 30 नवंबर, 2001 को कतिपय महिलाओं ने बाधा कारित किया, वे घटनास्थल पर आईं जबकि वादी का निर्माण कार्य चल रहा था । उसने यह भी प्रकथन किया कि न तो प्रतिवादियों का, न ही उनके कुटुंब सदस्यों का वाद भूमि के ऊपर कोई अधिकार, हक या हित था और तद्नुसार, इस पृष्ठभूमि में, उसने वादपत्र में उल्लिखित निबंधनों में स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए एक वाद फाइल किया ।

7. अपने लिखित कथन में, प्रतिवादियों ने यह कथन किया कि स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह और बाबू राम वाद भूमि में बराबर हिस्सेदारी रखते हुए गैर मौरूसी अभिधारी के रूप में अभिलिखित थे और वर्ष 1999 में ही श्री बाबू राम ने अपने हिस्से को स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह के पक्ष में छोड़ दिया था और उसका नामांतरण भी तारीख 16 अप्रैल, 1999 को अनुप्रमाणित हो गया था । प्रतिवादियों के अनुसार स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह वर्ष 1993 में वाद भूमि के आधे हिस्से के कब्जे में थे इसलिए वे न तो उस भूखंड को विभाजित करने या विक्रय करने के लिए सक्षम थे न ही वे नगर और ग्राम योजना विभाग से

इसकी मंजूरी लेने के लिए सक्षम थे । प्रतिवादियों ने इस बात से इंकार किया कि कोई करार स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह द्वारा वादी के साथ निष्पादित हुआ था । उन्होंने यह भी प्रकथन किया कि अन्यथा भी, गुलाब सिंह विक्रय करार करने के लिए विधिक तौर पर सक्षम नहीं थे । उन्होंने वादी को वाद भूमि का भौतिक कब्जा सौंपने के तथ्य से भी इनकार किया और प्रतिवादियों के अनुसार वे वाद भूमि के कब्जे में है । इन आधारों पर उन्होंने वादी के दावे से इनकार किया ।

8. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर, विद्वान् विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित विवाद्यकों को विरचित किया :–

"1. क्या वादी, स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश का अनुतोष पाने का हकदार है, जैसा कि अभिकथित है ?

2. क्या वादी, अपने कार्य, आचरण और विलेख के कारण वर्तमान वाद फाइल करने से विबंधित है ?

3. क्या वाद कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?

4. क्या वाद, परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित है ?

5. अनुतोष ।"

9. उपर्युक्त विरचित विवाद्यकों के आधार पर, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा उन पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गए :–

विवाद्यक सं. 1 – – – नहीं

विवाद्यक सं. 2 – – – नहीं

विवाद्यक सं. 3 – – – हां

विवाद्यक सं. 4 – – – नहीं

अनुतोष – – – निर्णय के प्रवर्तित भाग के अनुसार, वादी का वाद खारिज किया गया ।

10. तद्नुसार, वादी का वाद खारिज कर दिया गया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी ने स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह प्रतिवादियों के पिता द्वारा तारीख 16 जून, 1993 को 1,20,000/- रुपए के प्रतिफल में निष्पादित करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए के आधार पर भूखंड सं. 5 पर अपने कब्जाधारी विषयक अधिकारों के आधार पर स्थायी प्रतिषेधात्मक

व्यादेश के लिए वाद फाइल किया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी द्वारा अपने कथन में यह स्वीकार किया गया है कि अपने कब्जे की तारीख तक यह किसी राजस्व अभिलेख में अभिलिखित नहीं था । अभि. सा. 6, जय पाल चौहान, पटवारी ने भी स्पष्टत: यह स्वीकार किया है कि राजस्व अभिलेखों के अनुसार प्रतिवादी वाद भूमि के कब्जे में है । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय से यह सुस्पष्ट होता है कि वादी ने अपने कथन में यह स्वीकार किया था कि यद्यपि करार वर्ष 1993 में निष्पादित हुआ था और प्रतिवादियों के पिता की मृत्यु वर्ष 1998 में हुई थी, तथापि, इस अवधि के दौरान वादी ने संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए कोई वाद फाइल नहीं किया न ही उसने श्री गुलाब सिंह ठाकुर के विरुद्ध रकम वसूली के लिए कोई नोटिस इत्यादि या कोई वाद फाइल किया । विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला कि यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी वाद भूमि अर्थात् भूखंड सं. 5 के कब्जे में है और वादी उस पर अपने कब्जे को साबित करने में असफल रहा है और इस प्रकार, वादी द्वारा फाइल वाद खारिज किया जाता है ।

11. प्रथम अपील न्यायालय ने, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को कायम रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि अभिलेख पर के साक्ष्य से यह परिणाम नहीं निकलता है कि वादी, वस्तुत: करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए के निष्पादन के पश्चात् भूखंड सं. 5 के कब्जे में था । इसके बजाय, कब्जा भूमि के स्वामियों के पास होना प्रतीत होता है । यह भी अभिनिर्धारित किया कि भूखंड सं. 5 का हक या कब्जा वादी में निहित नहीं हुआ है और यह कि उस पर प्रतिवादियों का कब्जा है । यह भी अभिनिर्धारित किया कि कोई व्यक्ति संपूर्ण विश्व के विरुद्ध व्यादेश का दावा कर सकता है, सिवाय सही स्वामियों के विरुद्ध । इन आधारों पर, यह निष्कर्ष निकलता है कि विद्वान् विचारण न्यायालय, वादी के वाद को खारिज करने में न्यायानुमत था क्योंकि वादी वाद भूमि के ऊपर अपने कब्जे को साबित करने में असफल रहा है ।

12. अपीलार्थी के ज्येष्ठ काउंसेल श्री आर. के. बावा ने यह तर्क दिया कि दोनों निचले न्यायालयों ने अपीलार्थी का वाद खारिज करने में त्रुटि कारित की है कि अभिलेखों से यह सिद्ध होता है कि अपीलार्थी वस्तुत: खंड 5 के कब्जे में था । श्री बावा के अनुसार, अभि. सा. 5 करम सिंह और अभि. सा. 6 जय पाल चौहान के कथन इस तथ्य के बारे में एक जैसे हैं कि भूखंड सं. 5 का कब्जा वादी के पास था । तथापि, मामले के इस अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू का

दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अनदेखी और अवहेलना की गई है । उन्होंने यह भी तर्क दिया कि अभि. सा. 2 काली कुमार और अभि. सा. 3 अनिल डोगरा उक्त विक्रय करार के अनुप्रमाणक साक्षी थे । श्री बावा के अनुसार, इन साक्षियों ने अपने कथनों में, सुस्पष्टत: यह कथन किया है कि वाद भूमि का कब्जा वादी के पास था और उनके इस व्ययन को प्रतिवादियों के प्रतिकूल साबित नहीं किया जा सकता है । उन्होंने यह भी तर्क दिया कि विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया जा सका था । जब, प्रतिवादियों के हित-पूर्वाधिकारी जीवित थे क्योंकि जमाबंदी की प्रविष्टियों के अनुसार, वाद भूमि की स्वामी सरकार थी । उन्होंने यह भी तर्क दिया कि दोनों विद्वान् निचले न्यायालयों ने विक्रय करार अर्थात् प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए का गलत परिशीलन और गलत अर्थान्वयन किया है, जो उसके और श्री गुलाब सिंह ठाकुर के बीच हुआ था । श्री बावा ने उक्त करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए के खंड 2 की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है जिसमें यह उल्लिखित है कि प्रथम पक्षकार उस तारीख को तत्काल ही वित्तीय पक्षकार को विक्रीत भूमि का खाली कब्जा सौंपने के लिए सहमत हुआ था और द्वितीय पक्षकार को उक्त भूमि का किसी भी तरीके से उपयोग करने की स्वतंत्रता थी जैसा कि वह चाहता है और द्वितीय पक्षकार को उस पर कोई भी निर्माण करने की स्वतंत्रता थी । श्री बावा के अनुसार वादी के कब्जे में होने के नाते वाद भूमि के तथ्य का कोई सबूत देना अपेक्षित नहीं था । इसलिए उन्होंने यह दलील दी कि विद्वान् दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय त्रुटिपूर्ण थे और दोनों विद्वान् न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष, अभिलेखों के परिणामस्वरूप नहीं थे और तद्नुसार उक्त निर्णयों को अपास्त करने की प्रार्थना की गई थी । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी की ओर भी आकर्षित किया जो वादी द्वारा सचिव, राजस्व विभाग को संप्रेषित संसूचना थी जिसमें उनके अनुसार वादी ने स्पष्टत: यह उल्लिखित किया था कि वह वाद भूमि के कब्जे में था ।

13. श्री बावा ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/डी को भी निर्दिष्ट किया है जो वादी द्वारा प्रतिवादी को तामील विधिक नोटिस है जिसके द्वारा उसने अपने पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए प्रतिवादियों को बुलाया था ।

14. दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री टेक चंद शर्मा ने यह जोरदार तर्क दिया है कि वर्तमान अपील में कोई गुणागुण नहीं है और यह खारिज किए जाने योग्य है । इनके अनुसार, जब दोनों निचले न्यायालयों ने अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्रियों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी

वाद भूमि के कब्जे में नहीं था और यह प्रतिवादी ही थे जो उसके कब्जे में थे तो प्रतिवादियों के पक्ष में इस तथ्य के बारे में समवर्ती निष्कर्ष होते हुए, इस न्यायालय को उक्त समवर्ती तथ्य के निष्कर्ष में विघ्न नहीं डालना चाहिए । उनके अनुसार, अपीलार्थी यह वर्णित करने में असफल रहा है । विद्वान् निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों में कोई ऐसी प्रतिकूलता थी कि वाद भूमि का कब्जा प्रतिवादियों के पास था । श्री शर्मा ने यह तर्क दिया कि वस्तुत:, वादी ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि कब्जे को कहीं भी किसी राजस्व अभिलेख में अभिलिखित नहीं किया गया है । उन्होंने यह तर्क दिया है कि वादी द्वारा उन पर तामील विधिक नोटिस अर्थात् प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/डी के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि उक्त नोटिस में वादी द्वारा ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया है कि वाद भूमि के कब्जे में है । उनके अनुसार, वाद भूमि प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों के कब्जे में है क्योंकि अपीलार्थी/वादी, प्रतिवादियों के विरुद्ध स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश मंजूर करने के लिए कोई भी हेतुक सिद्ध करने में बुरी तरह से असफल रहे हैं, इसलिए वर्तमान अपील खारिज होने योग्य हैं ।

15. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और मामले के अभिलेखों का भी परिशीलन किया ।

16. विधि का सारवान् प्रश्न जिस पर वर्तमान अपील स्वीकृत की गई है, को पहले ही उपर्युक्त उद्धृत किया जा चुका है ।

17. इस न्यायालय द्वारा विरचित विधि के सारवान् प्रश्न को ध्यान में रखते हुए, मैं सर्वप्रथम करार प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए के दोनों अनुप्रमाणक साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 2 काली कुमार और अभि. सा. 3 अनिल डोगरा के कथनों पर विचार किया । अभि. सा. 2 अनिल कुमार के अनुसार, तारीख 16 जून, 1993 को गुलाब सिंह ने वादी के साथ एक करार निष्पादित किया था और उसके अनुसार, भूखंड का कब्जा पहले ही वादी को गुलाब सिंह द्वारा दिया जा चुका था । उसकी प्रतिपरीक्षा के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि उसने इसमें यह उल्लिखित किया है कि प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए को उसके उस पर हस्ताक्षर करने से पहले ही तैयार किया जा चुका था और वह यह नहीं कह सकता है कि किसने उसे टंकित किया था । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि उसने उस दिन को ही गुलाब सिंह को देखा था । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह भी उल्लेख किया है कि वह घटनास्थल पर नहीं गया था, इसलिए, वह

यह नहीं कह सकता है कि कौन वाद संपत्ति के कब्जे में है ।

18. इसी प्रकार, अभि. सा. 3 अनिल डोगरा ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह भी स्वर्गीय श्री गुलाब सिंह और वादी के बीच हुए करार का एक साक्षी है । उसने इस सुझाव को स्वीकार किया है कि वह वाद भूमि पर नहीं गया है ।

19. इनके अलावा, अभि. सा. 4 एन. एस. चौहान ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वर्ष 1993 में वादी ने गुलाब सिंह से वाद भूमि क्रय की थी और यह कि गुलाब सिंह ने करार निष्पादित होने के पूर्व ही वादी को भूखंड सं. 5 का कब्जा सौंप दिया था । अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसने यह कथन किया है कि उसकी उपस्थिति में कोई संदाय नहीं किया गया था और उसके समक्ष करार निष्पादित नहीं हुआ था । उसने यह भी कथन किया कि वह यह नहीं जानता है कि कब वादी को वाद भूमि का कब्जा दिया गया था क्योंकि वह उस समय मौजूद नहीं था जब वादी को कब्जा सौंपा गया था ।

20. इस पृष्ठभूमि में, हम वादी (अभि. सा. 1) वादी के कथन की परीक्षा करेंगे । उसके अनुसार, करार 1,20,000/- रुपए के प्रतिफल की रकम में तारीख 16 जून, 1993 को निष्पादित हुआ था । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि करार में सहमति के अनुसार संदाय प्राप्त किया था और उसके बाद उसने उसे वाद भूमि का कब्जा सौंपा था । अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसने यह स्वीकार किया है कि भूमि की स्वामी सरकार थी और स्वर्गीय गुलाब सिंह गैर मौरूसी था । उसने यह भी स्वीकार किया कि बाबू राम, गुलाब सिंह का भाई भी गैर मौरूसी के रूप में अभिलिखित था । दुर्भाग्यपूर्ण तौर पर, उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि उसे यह याद नहीं है कि किसने करार टंकित किया है क्योंकि उसने उसे टंकित दशा में गुलाब सिंह से प्राप्त किया था । उसने यह स्वीकार किया कि गुलाब सिंह के जीवनकाल के दौरान, उसने विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए उस पर कभी भी दबाव नहीं बनाया, न ही उसने उसके विरुद्ध वसूली के लिए कोई वाद फाइल किया । उसने यह भी स्वीकार किया कि आज की तारीख तक किसी भी राजस्व अभिलेख में इस भूमि पर उसका कब्जा प्रविष्ट नहीं हुआ है ।

21. साक्षियों के अभिसाक्ष्यों में से एक और साक्षी अर्थात् श्री करम चंद के साक्ष्य का भी परिशीलन किया जा सकता है । अपने कथन में, श्री करम सिंह ने यह कथन किया है कि जून, 1993 में, गुलाब सिंह ने वादी को वाद भूमि का कब्जा सौंपा था और इसके पश्चात्, वर्ष 2000 में वादी और प्रतिवादी

इत्यादि पुन: घटनास्थल पर गए थे और प्रतिवादियों ने वादी को वाद भूमि का कब्जा सौंपा था ।

22. मेरे सुविचारित मत में, उपर्युक्त साक्षियों के कथनों से ऐसा कोई विश्वास पैदा नहीं होता है कि कभी भी मृतक श्री गुलाब सिंह द्वारा वादी को वाद भूमि का कब्जा सौंपा गया था । वस्तुत:, इन साक्षियों के कथनों में अत्यधिक विरोधाभास हैं । जबकि एक साक्षी ने यह कथन किया है कि वाद भूमि का कब्जा, विक्रय करार निष्पादित होने के पूर्व ही गुलाब सिंह द्वारा वादी को सौंप दिया गया था, यह वादी के अभिसाक्ष्य के प्रतिकूल है ।

23. जहां तक विक्रय करार के साक्षियों का संबंध है, उनमें से कोई भी घटनास्थल पर नहीं गया है और उन्होंने स्पष्टत: यह कथन किया है कि वे यह कहने की दशा में नहीं हैं कि कौन वास्तव में, वाद भूमि के कब्जे में है । इसके अतिरिक्त, वादी ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि वाद भूमि पर उसका कब्जा किसी राजस्व अभिलेख में प्रविष्ट नहीं है । इसके प्रतिकूल, प्रतिवादियों ने सफलतापूर्वक यह साबित कर दिया है कि वे वास्तव में, वाद संपत्ति के कब्जे में है और यह उन राजस्व अभिलेखों से भी प्रकट होता है, जिनसे प्रतिवादियों का वाद संपत्ति में कब्जा प्रलक्षित होता है ।

24. मामले के इस मत को ध्यान में रखते हुए, मेरे सुविचारित मत में, निचले न्यायालयों ने स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए अपीलार्थी का वाद खारिज करने में कोई प्रतिकूलता कारित नहीं की है क्योंकि वादी यह साबित करने में असफल रहा है कि उसे प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों के हित-पूर्वाधिकारी वाद संपत्ति का कब्जा सौंपा गया था और वह वास्तव में, उस समय वाद संपत्ति के कब्जे में था जब उसने वाद फाइल किया था । तद्नुसार, विधि के सारवान् प्रश्न का उत्तर दिया जाता है ।

25. इसलिए उपर्युक्त मेरे निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए अपील खारिज की जाती है । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

द्वितीय अपील खारिज की गई ।

क.

कालू राम

बनाम

पंजाब नेशनल बैंक और एक अन्य

तारीख 5 जुलाई, 2016

न्यायमूर्ति संदीप शर्मा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2(त) और धारा 18(1) के साथ औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम, 1957 का नियम 58] – याचिका की संधार्यता – सेवा का विनियमितीकरण – बैंक और उसके कर्मकारों के बीच औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 और औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम, 1957 के अधीन किए गए द्विपक्षीय समझौतों, शास्त्री अधिनिर्णय और देसाई अधिनिर्णय के उपबंधों के अधीन कोई विवाद होने पर विवाद का समाधान उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल न करके बल्कि औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन निकाला जा सकता है ।

अभिलेख से उद्भूत संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि याची को जिला कांगड़ा के तहसील जावली के पंजाब नेशनल बैंक, लुभ की शाखा में वर्ष 1973 में झाड़ूकश के रूप में लगाया गया था । याची ने 1 जनवरी, 1973 को झाड़ूकश के रूप में अपना पदभार ग्रहण किया और पदभार ग्रहण करने के समय वेतन के रूप में 30/- रुपए दिया गया था । याची के अनुसार, वह लगातार अपनी नियुक्ति की आरंभिक तारीख से आज की तारीख तक प्रत्यर्थी बैंक के पास झाड़ूकश के रूप में कार्य कर रहा था और इस अवधि के दौरान उसके वेतन में समय-समय पर वृद्धि की गई थी । याचिका फाइल करने के समय, याची प्रतिमास 1,500/- रुपए वेतन प्राप्त कर रहा था । याची ने अपनी याचिका में यह कहा कि उसने पिछले 36 वर्षों से अधिक समय से प्रत्यर्थी बैंक की सेवा कर रहा था किंतु किसी भी प्रकार से प्रत्यर्थी बैंक द्वारा उसकी सेवाओं को नियमित करने के लिए प्रत्यर्थी बैंक द्वारा कोई कदम नहीं उठाया गया । याची ने आगे यह निवेदन किया कि बैंक के साथ उसकी सेवा के दौरान, उसने प्रत्यर्थी बैंक के संपूर्ण समाधान तक कार्य किया और इस अवधि के दौरान किसी भी प्रकार की कोई शिकायत याची के विरुद्ध कभी नहीं की गई किंतु यह याची का दुर्भाग्य है कि प्रत्यर्थी बैंक द्वारा बहुत अयुक्तिसंगत,

मनमाने और अनुचित ढंग से उसके साथ बर्ताव किया गया । आज तक उसकी सेवाएं नियमित नहीं की गईं हैं । उसने याचिका में यह भी कहा कि 36 वर्षों की इस अवधि के दौरान, प्रत्यर्थी बैंक ने उनसे चपरासी का कार्य लिया और इस प्रकार वह इस न्यायालय के समक्ष कालू राम बनाम पंजाब नेशनल बैंक, सिविल रिट याचिका सं. 5064/2009 फाइल करने के लिए मजबूर हुआ । इस न्यायालय ने तारीख 24 फरवरी, 2010 के निर्णय (उपाबंध पी-3) द्वारा उन्हें प्रत्यर्थियों को एक मास की अवधि के भीतर प्रत्यर्थियों को अभ्यावेदन देने और प्रत्यर्थियों को तीन मास की अवधि के भीतर इसे विनिश्चित करने का निदेश दिया । याची ने तारीख 24 फरवरी, 2010 के निर्णय के निबंधनानुसार प्रत्यर्थी बैंक के प्राधिकारियों को अभ्यावेदन दिया किंतु अभ्यावेदन के लंबित रहने के दौरान उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गईं और उसे उपदान फायदे शोध्य के रूप में 22,403/- रुपए की राशि दी गई थी । प्रत्यर्थियों ने तारीख 5 जून, 2010 के आदेश (उपाबंध-5) द्वारा इस आधार पर याची के अभ्यावेदन को अस्वीकार कर दिया कि उसे प्रत्यर्थी बैंक में वर्ष 1973 में लगाया गया था किंतु चूंकि उसका वेतन शास्त्री अधिनिर्णय/ द्विपक्षीय समझौते के अनुसार दिया जा रहा था इसलिए उसकी सेवाएं नियमित नहीं की जा सकतीं । प्रत्यर्थियों ने यह भी मत व्यक्त किया कि याची को अंशकालिक झाड़ूकश के रूप में नियुक्त किया गया था और शास्त्री अधिनिर्णय के अधीन लागू मार्ग-दर्शक सिद्धांतों के अनुसार, वह ऐसे उपदान के सिवाय किसी सेवा फायदे का हकदार नहीं है जिसे उसकी सेवानिवृत्ति अर्थात् 30 अप्रैल, 2010 के पश्चात् उसके पक्ष में सम्यक् रूप से संदत्त कर दिया गया है । यह याची आदेश तारीख 5 जून, 2010 जिसके द्वारा उसके अभ्यावेदन को प्रत्यर्थियों द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, से व्यथित होकर इस रिट याचिका के माध्यम से इस न्यायालय में आवदेन किया । याची के अनुसार, कार्यालय आदेश तारीख 5 जून, 2010 विधि की दृष्टि से संधार्य नहीं है, विशेषकर तब जब याची 1973 से लगातार प्रत्यर्थी बैंक में कार्य कर रहा है और इस अवधि के दौरान उसने झाड़ूकश या अंशकालिक कर्मकार के रूप में कार्य नहीं किया बल्कि समय-समय पर उक्त शाखा के प्राधिकारियों के निदेश के अनुसार चपरासी की सेवाएं दे रहा था । याची की आगे यह दलील है कि प्रत्यर्थी बैंक द्वारा इस प्रक्रम पर किया गया तकनीकी आक्षेप काफी अवैध और गलत है और याची के विधिसम्मत दावे के पराजय के लिए उपयोग करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । याचिका में याची ने यह भी दलील दी कि प्रत्यर्थी बैंक के साथ लगभग 36 वर्षों तक उसके कार्य करने

के बावजूद, प्रत्यर्थी उसकी सेवाएं विनियमित करने में असफल रहे और प्रत्यर्थी बैंक की ऐसी कार्रवाई पूर्णतः मनमाना, अवैध और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण करते हुए विधि की दृष्टि से अमान्य है और इसे विधि के अनुसार ठीक किया जाना अपेक्षित है । याची द्वारा उच्च न्यायालय में उत्प्रेषण और परमादेश प्रकृति की रिट की मांग करते हुए, यह रिट याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – चूंकि प्रत्यर्थी का प्रतिनिधित्व कर रहे काउंसेल द्वारा इस याचिका की संधार्यता से संबंधित विनिर्दिष्ट आक्षेप किए गए हैं इसलिए मामले के गुणागुण पर विचार करने के पूर्व पहली नजर में संधार्यता के मुद्दे को विनिश्चित करना इस न्यायालय के लिए उचित होगा । अभिलेख पर उपलब्ध अभिवचनों के सावधानीपूर्वक परिशीलन से स्पष्टतः यह इंगित होता है कि याची को वर्ष 1973 में अर्थात् 1 जनवरी, 1973 से झाड़ूकश के रूप में लगाया गया था और उस समय उसे 30/- रुपए प्रतिमास की दर से वेतन संदत्त किया गया था । यह भी अविवादित है कि याची अपनी सेवानिवृत्ति अर्थात् 30 अप्रैल, 2010 तक अपनी आरंभिक नियुक्ति अर्थात् 1 जनवरी, 1973 से प्रत्यर्थी बैंक के पास लगातार झाड़ूकश के रूप में कार्य कर रहा था । याची की स्वयं स्वीकृति के अनुसार, वह इस याचिका के फाइल करने के समय पर अर्थात् 25 जुलाई, 2010 को 1,500/- रुपए प्रतिमास का वेतन पा रहा था । अभिलेख के अनुसार, याची सेवा से 30 अप्रैल, 2010 से सेवानिवृत्त हो गया जबकि यह याचिका 25 अप्रैल, 2010 को फाइल की गई । इस न्यायालय ने एकमात्र यह सुनिश्चित करने की दृष्टि से कि याची के प्रति कोई अन्याय न हो, फाइल पर उपलब्ध संपूर्ण अभिलेख का परिशीलन किया किंतु उसे इस तथ्य से संबंधित कोई दस्तावेज हाथ नहीं लगा कि याची को नियमित आधार पर प्रत्यर्थी बैंक द्वारा लगाया गया था बल्कि अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेज के परिशीलन से स्पष्टतः यह पता चला कि प्रत्यर्थी बैंक द्वारा शास्त्री अधिनिर्णय के पैरा 123, देसाई अधिनिर्णय के पैरा 5.191 और बैंकों और उसके कर्मकारों के बीच किए गए द्विपक्षीय समझौते जिसमें समय-समय पर समेकित माहवार मजदूरी, जिसे द्विपक्षीय समझौते के निबंधनानुसार समय-समय पर आगे बढ़ाई जाती थी, के उपबंधों के अधीन बैंक के परिसरों की सफाई करने के लिए अंशकालिक झाड़ूकश के रूप में याची को लगाया गया था । अभिलेख से यह भी पता चलता है कि याची सप्ताह में छह घंटे से कम का अंशकालिक कर्मचारी के रूप में कार्य किया करता था । प्रत्यर्थियों ने

यह प्रदर्शित करने के लिए कतिपय बैंककारी कंपनियों और उनके कर्मकारों के बीच औद्योगिक विवादों में अखिल भारतीय औद्योगिक अधिकरण (बैंक विवाद) को अभिलेख पर प्रस्तुत किया कि अपनी शिकायतों को दूर करने के लिए याची को उपलब्ध समुचित उपचार यदि कोई है तो वह औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अधीन है न कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन फाइल की गई इस रिट याचिका के माध्यम से । विभिन्न बैंकों के प्रबंध मंडल और उनके कर्मकारों के बीच हुए पूर्वोक्त समझौते की गहन संवीक्षा से यह प्रकट होता है कि समझौता औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2(त) और धारा 18(1) के साथ पठित औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम, 1957 के नियम 58 के अधीन किया गया है । यह भी इंगित होता है कि 52 बैंक समझौते के पक्षकार थे जो स्वीकार्यतः सुसंगत समय पर वर्ग "क" बैंक थे और समझौते के उक्त ज्ञापन में अनुसूची 1 में सूचीबद्ध थे । कतिपय बैंककारी कंपनियों और उनके कर्मकारों के बीच औद्योगिक विवादों के समझौते के खंड 4.5 में स्पष्टतः यह इंगित है कि अंशकालिक कर्मकारों को देसाई अधिनिर्णय के पैरा 5.191 के निबंधनानुसार लगाया गया है जो प्रत्यर्थी बैंक का विनिर्दिष्ट मामला है । पूर्वोक्त विमर्शित शास्त्री अधिनिर्णय, देसाई अधिनिर्णय और द्विपक्षीय समझौतों में केवल बैंकों द्वारा नियोजित कर्मकारों की शर्तों और निबंधनों का उल्लेख है । तारीख 10 अप्रैल, 2002 के द्विपक्षीय समझौते के परिशीलन मात्र से स्पष्टतः यह प्रदर्शित होता है कि यहां उपरोक्त निर्दिष्ट समझौता औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2(त) और धारा 18(1) के साथ पठित औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम, 1957 के नियम 58 के अधीन किया गया था और इसके पश्चात् बैंकों द्वारा नियोजित कर्मकारों की सेवा शर्तों को विनियमित करने वाले पूर्वोक्त शास्त्री/देसाई अधिनिर्णय पारित किए गए । किंतु असलियत यह है कि पूर्वोक्त समझौता औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन बैंकों के प्रबंध मंडल और उनके कर्मकारों के बीच किया गया है जिसका यह अर्थ है कि कर्मकार होते हुए वर्तमान याची को उपलब्ध अनुकल्पी उपचार, यदि कोई है, तो वह औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अधीन यथा परिकल्पित समुचित प्राधिकारियों के समक्ष आवेदन करना है । कर्मकारों के अधिकारों को विनिर्दिष्ट रूप से पूर्वोक्त अधिनियम के अधीन परिभाषित किया गया है और अधिनियम के उपबंधों को प्रवृत्त करने के लिए पूरी व्यवस्था की गई है । अतः, इस न्यायालय का यह मत है कि प्रत्यर्थी बैंक की ओर से दी गई दलीलों में पर्याप्त बल है कि यह याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद

226 के अधीन संधार्य नहीं है चूंकि याची की सेवा शर्तें शास्त्री अधिनिर्णय और देसाई अधिनिर्णय द्वारा शासित हैं/थीं । अतः, याची की शिकायत के प्रतितोष के लिए समुचित उपचार यदि कोई है, औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन है न कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलंब लेकर । जहां तक इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 24 अप्रैल, 2010 के निर्णय के अनुपालन में प्रत्यर्थी बैंक द्वारा पारित तारीख 5 जून, 2010 के आदेश का संबंध है, इस न्यायालय ने याची की ओर से उठाए गए तर्कों की असलियत और सत्यता सुनिश्चित करने के लिए आदेश तारीख 5 जून, 2010 की बहुत सावधानीपूर्वक परीक्षा की कि तारीख 5 जून, 2010 का आदेश पारित करते समय उसे सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था और यह पाया कि याची की ओर से दी गई पूर्वोक्त दलील में कोई बल नहीं है । इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 24 फरवरी, 2010 के निर्णय के अनुसरण में, याची कालू राम ने 1973 से नियमित नामावली में उसे मानते हुए और सभी सेवांत फायदे अर्थात् वेतन, वेतन का बकाया, सेवानिवृत्ति फायदे और पेंशन आदि उसे देने का अनुरोध करते हुए तारीख 16 मार्च, 2010 को विस्तृत अभ्यावेदन फाइल किया । प्रत्यर्थी बैंक ने याची द्वारा फाइल तारीख 16 मार्च, 2010 के अभ्यावेदन पर विचार करते हुए मामले के प्रत्येक पहलू पर विचार किया और याची की ओर से उठाए गए सभी मुद्दों का उत्तर दिया और इस प्रकार यह न्यायालय याची द्वारा प्रस्तुत न सुने जाने की दलील को स्वीकार करने में असमर्थ है । उस आदेश में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया है कि चूंकि याची को शास्त्री अधिनिर्णय/द्विपक्षीय समझौते के अनुसार समय-समय पर समेकित मजदूरी संदत्त की जा रही थी, द्विपक्षीय समझौते/देसाई अधिनिर्णय में नियमित नामावली में समेकित मजदूरी पर लगाए गए अंशकालिक कर्मकारों की सेवाओं को विनियमित करने का कोई उपबंध नहीं है । यह न्यायालय प्रत्यर्थियों द्वारा पारित तारीख 5 जून, 2010 के आदेश में कोई अवैधता नहीं पाता जिसके द्वारा याची उसके विनियमितीकरण के लिए प्रस्तुत दावे को प्रत्यर्थी बैंक द्वारा नामंजूर कर दिया गया । चूंकि अभिलेख पर सम्यक् रूप से यह साबित होता है कि याची की नियुक्ति अंशकालिक झाड़ूकश के रूप में शास्त्री अधिनिर्णय और द्विपक्षीय संशोधनों के निबंधनानुसार की गई थी । इसलिए इस न्यायालय को प्रत्यर्थी बैंक की ओर से दी गई दलील को स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि याची को उपचार, यदि कोई है, तो वह औद्योगिक विवाद अधिनियम

के अधीन है । एक बार यह साबित हो जाने पर कि बैंक द्वारा लगाए गए कर्मकारों की सेवा-शर्तें शास्त्री अधिनिर्णय और द्विपक्षीय समझौते द्वारा शासित है जो स्वीकार्यतः औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अधीन पारित है तो इस न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने के सिवाय कोई और विकल्प नहीं है कि यह याचिका संधार्य नहीं है और याची की शिकायत के प्रतितोष के लिए उपचार, यदि कोई है, तो वह औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन उपलब्ध है । चूंकि तारीख 10 अप्रैल, 2002 का द्विपक्षीय समझौता औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2(त) और धारा 18(1) के साथ पठित औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम, 1957 के नियम 58 के अधीन किया गया है इसलिए, कर्मकारों और बैंक के बीच विवाद यदि कोई है, का समाधान औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन न कि रिट याचिका के माध्यम से अपेक्षित हैं । अभिलेख पर उपलब्ध अभिवचनों के परिशीलन के पश्चात्, यह विवादित नहीं है कि याची औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन कर्मकार है और इस प्रकार उसके पास औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन अनुकल्पी उपचार है । तथापि, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, याची की सेवाएं 30 अप्रैल, 2010 को 60 वर्ष पूरा करने के पश्चात् समाप्त कर दी गई है । परिणामतः, पूर्वोक्त की गई विस्तृत चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित 24 फरवरी, 2010 के निर्णय के निबंधनानुसार प्रत्यर्थी बैंक द्वारा पारित तारीख 5 जून, 2010 के आदेश (उपाबंध पी-5) में कोई अवैधता या कमी नहीं पाता और इस प्रकार इसे कायम रखता है । (पैरा 9, 10, 11, 15, 16 और 17)

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2010 की सिविल रिट याचिका सं. 5254.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री नरेश वर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री अजय कुमार, ज्येष्ठ अधिवक्ता और धीरज वशिष्ट

न्यायमूर्ति संदीप शर्मा – इस याचिका के माध्यम से याची ने निम्नलिखित अनुतोष की मांग की :–

(i) उपाबंध पी-5 को अवैध मानकर अभिखंडित करते हुए उत्प्रेषण प्रकृति की रिट जारी की जाए ;

(ii) प्रत्यर्थी बैंक को न्यायहित में याची को 1973 से नियमित नामावली में नामांकित मानने का निदेश देते हुए और तद्द्वारा याची को सभी सेवा फायदों का हकदार ठहराते हुए जिसके लिए नियमित कर्मचारी हकदार हैं जैसे वेतन का बकाया और इसके पश्चात् उसकी सेवा समाप्ति पर सभी सेवांत फायदे, पेंशन आदि का हकदार ठहराते हुए परमादेश प्रकृति की रिट जारी की जाए ;

(iii) माननीय न्यायालय के परिशीलन के लिए इस मामले से संबंधित संपूर्ण अभिलेख मंगाया जाए ;

(iv) रिट याचिका का खर्चा याची के पक्ष में और प्रत्यर्थियों के विरुद्ध मंजूर किया जाए ;

(v) ऐसा कोई अन्य समुचित रिट, आदेश या निदेश जो यह न्यायालय मामले के तथ्यों की परिस्थितियों में उचित, ठीक और उपयुक्त समझे, न्यायहित और निष्पक्ष रूप से याची के पक्ष में जारी/पारित किया जाए ।

2. अभिलेख से उद्भूत संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि याची को जिला कांगड़ा के तहसील जावली के पंजाब नेशनल बैंक, लुभ की शाखा में वर्ष 1973 में झाड़ूकश के रूप में लगाया गया था । याची ने 1 जनवरी, 1973 को झाड़ूकश के रूप में अपना पदभार ग्रहण किया और पदभार ग्रहण करने के समय वेतन के रूप में 30/- रुपए दिया गया था । याची के अनुसार, वह लगातार अपनी नियुक्ति की आरंभिक तारीख से आज की तारीख तक प्रत्यर्थी बैंक के पास झाड़ूकश के रूप में कार्य कर रहा था और इस अवधि के दौरान उसके वेतन में समय-समय पर वृद्धि की गई थी । याचिका फाइल करने के समय, याची प्रतिमास 1,500/- रुपए वेतन प्राप्त कर रहा था । याची ने अपनी याचिका में यह कहा कि उसने पिछले 36 वर्षों से अधिक समय से प्रत्यर्थी बैंक की सेवा कर रहा था किंतु किसी भी प्रकार से प्रत्यर्थी बैंक द्वारा उसकी सेवाओं को नियमित करने के लिए प्रत्यर्थी बैंक द्वारा कोई कदम नहीं उठाया गया । याची ने आगे यह निवेदन किया कि बैंक के साथ उसकी सेवा के दौरान, उसने प्रत्यर्थी बैंक के संपूर्ण समाधान तक कार्य किया और इस अवधि के दौरान किसी भी प्रकार की कोई शिकायत याची के विरुद्ध कभी नहीं की गई किंतु यह याची का दुर्भाग्य है कि प्रत्यर्थी बैंक द्वारा बहुत अयुक्तिसंगत, मनमाने और अनुचित ढ़ंग से उसके साथ बर्ताव किया गया ।

आज तक उसकी सेवाएं नियमित नहीं की गई हैं । उसने याचिका में यह भी कहा कि 36 वर्षों की इस अवधि के दौरान, प्रत्यर्थी बैंक ने उनसे चपरासी का कार्य लिया और इस प्रकार वह इस न्यायालय के समक्ष कालू राम बनाम पंजाब नेशनल बैंक, सिविल रिट याचिका सं. 5064/2009 फाइल करने के लिए मजबूर हुआ । इस न्यायालय ने तारीख 24 फरवरी, 2010 के निर्णय (उपाबंध पी-3) द्वारा उन्हें प्रत्यर्थियों को एक मास की अवधि के भीतर प्रत्यर्थियों को अभ्यावेदन देने और प्रत्यर्थियों को तीन मास की अवधि के भीतर इसे विनिश्चित करने का निदेश दिया । याची ने तारीख 24 फरवरी, 2010 के निर्णय के निबंधनानुसार प्रत्यर्थी बैंक के प्राधिकारियों को अभ्यावेदन दिया किंतु अभ्यावेदन के लंबित रहने के दौरान उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गईं और उसे उपदान फायदे शोध्य के रूप में 22,403/- रुपए की राशि दी गई थी । प्रत्यर्थियों ने तारीख 5 जून, 2010 के आदेश (उपाबंध पी-5) द्वारा इस आधार पर याची के अभ्यावेदन को अस्वीकार कर दिया कि उसे प्रत्यर्थी बैंक में वर्ष 1973 में लगाया गया था किंतु चूंकि उसका वेतन शास्त्री अधिनिर्णय/ द्विपक्षीय समझौते के अनुसार दिया जा रहा था इसलिए उसकी सेवाएं नियमित नहीं की जा सकतीं । प्रत्यर्थियों ने यह भी मत व्यक्त किया कि याची को अंशकालिक झाड़ूकश के रूप में नियुक्त किया गया था और शास्त्री अधिनिर्णय के अधीन लागू मार्ग-दर्शक सिद्धांतों के अनुसार, वह ऐसे उपदान के सिवाय किसी सेवा फायदे का हकदार नहीं है जिसे उसकी सेवानिवृत्ति अर्थात् 30 अप्रैल, 2010 के पश्चात् उसके पक्ष में सम्यक् रूप से संदत्त कर दिया गया है । यह याची आदेश तारीख 5 जून, 2010 जिसके द्वारा उसके अभ्यावेदन को प्रत्यर्थियों द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, से व्यथित होकर इस रिट याचिका के माध्यम से इस न्यायालय में आवदेन किया । याची के अनुसार, कार्यालय आदेश तारीख 5 जून, 2010 विधि की दृष्टि से संधार्य नहीं है, विशेषकर तब जब याची 1973 से लगातार प्रत्यर्थी बैंक में कार्य कर रहा है और इस अवधि के दौरान उसने झाड़ूकश या अंशकालिक कर्मकार के रूप में कार्य नहीं किया बल्कि समय-समय पर उक्त शाखा के प्राधिकारियों के निदेश के अनुसार चपरासी की सेवाएं दे रहा था । याची की आगे यह दलील है कि प्रत्यर्थी बैंक द्वारा इस प्रक्रम पर किया गया तकनीकी आक्षेप काफी अवैध और गलत है और याची के विधिसम्मत दावे के पराजय के लिए उपयोग करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । याचिका में याची ने यह भी दलील दी कि प्रत्यर्थी बैंक के साथ लगभग 36 वर्षों तक उसके कार्य

करने के बावजूद, प्रत्यर्थी उसकी सेवाएं विनियमित करने में असफल रहे और प्रत्यर्थी बैंक की ऐसी कार्रवाई पूर्णतः मनमाना, अवैध और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण करते हुए विधि की दृष्टि से अमान्य है और इसे विधि के अनुसार ठीक किया जाना अपेक्षित है ।

3. याची के अनुसार, बैंक में उसके आरंभिक नियुक्ति के समय शास्त्री अधिनिर्णय के अधीन लागू कोई स्कीम/मार्ग-दर्शक सिद्धांत नहीं थे और इस प्रकार प्रत्यर्थियों को तथाकथित शास्त्री अधिनिर्णय का कोई फायदा/लाभ यदि कोई है लेने की, वह भी याची के विधिसम्मत दावे को विफल करने के लिए, अनुज्ञा नहीं दी जा सकती ।

4. प्रत्यर्थियों ने विस्तृत उत्तर द्वारा याची द्वारा किए गए दावे का खंडन किया । प्रत्यर्थियों ने अपने उत्तर में यह कहा कि याची को कभी बैंक की शाखा में नियमित झाड़ूकश के रूप में नहीं लगाया गया था बल्कि शास्त्री अधिनिर्णय के पैरा 123 और देसाई अधिनिर्णय के पैरा 5.191 के उपबंधों के अधीन बैंक के परिसर को साफ करने के लिए अंशकालिक झाड़ूकश के रूप में लगाया गया था और बैंक और उसके कर्मकारों के बीच समय-समय पर समेकित माहवार मजदूरी पर द्विपक्षीय समझौते किए जाते थे जिन्हें आगे समय-समय पर द्विपक्षीय समझौते के अनुसार बढ़ाया जाता था । प्रत्यर्थियों ने कार्य समय से संबंधित याची के अभिकथनों का अभिखंडन किया । प्रत्यर्थी के अनुसार अंशकालिक कर्मचारियों का कार्य समय एक सप्ताह में छह घंटे से कम था जो दिन में लगभग एक घंटे निकलता है । प्रत्यर्थियों ने शास्त्री अधिनिर्णय और देसाई अधिनिर्णय (उपाबंध आर. ए. और आर. बी.) तथा द्विपक्षीय समझौता (उपाबंध आर. सी.) के उद्धरण भी अभिलेख पर उपलब्ध कराए । प्रत्यर्थियों ने उत्तर में यह भी कहा कि याची की सेवाएं और मजदूरी शास्त्री/देसाई अधिनिर्णय तथा द्विपक्षीय समझौते के अधीन विनियमित किए जाते हैं/किए जाते थे और चूंकि याची बैंक परिसरों को केवल साफ करने के लिए एक सप्ताह में छह घंटे से कम समय के लिए अंशकालिक झाड़ूकश के रूप में कार्य करता था इसलिए विनियमितीकरण हेतु याची द्वारा किया गया कोई दावा मान्य नहीं है और कतई स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

5. प्रत्यर्थियों ने उत्तर में यह भी दलील दी कि चूंकि याची को अंशकालिक झाड़ूकश के रूप में लगाया गया था और वह बैंक का नियमित कर्मचारी नहीं था इसलिए बैंक के अन्य कर्मचारियों की तरह उसकी सेवाएं नियमित नहीं की जा सकती । प्रत्यर्थियों ने स्पष्ट रूप से याची की दलील

का खंडन किया कि उसकी सेवाओं का उपयोग चपरासी के रूप में बैंक द्वारा किया गया था । प्रत्यर्थियों के अनुसार, याची एक निरक्षर व्यक्ति है और बैंक में चपरासी के पद के लिए न्यूनतम बारहवीं अर्हता हिंदी और अंग्रेजी भाषा के पठन/लिखावट की जानकारी के साथ अपेक्षित है । प्रत्यर्थियों के उत्तर से यह भी प्रकट होता है कि याची की सेवाएं 30 अप्रैल, 2010 को 60 वर्ष की आयु पूरा करने के पश्चात् समाप्त कर दी गई हैं और द्विपक्षीय समझौते के निबंधनानुसार उसे द्विपक्षीय समझौतों के उपबंधों के अनुसार उपदान संदत्त किया गया है । प्रत्यर्थियों के अनुसार, याची को बैंक परिसर की सफाई करने के लिए समेकित मजदूरी पर अंशकालिक झाड़ूकश के रूप में बैंक में लगाया गया था और उसकी नियुक्ति शास्त्री/देसाई अधिनिर्णय के मार्ग-दर्शक सिद्धांतों के अनुसार की गई थी और तद्नुसार उसे द्विपक्षीय समझौते के अनुसार मजदूरी दी गई थी । प्रत्यर्थियों के अनुसार चूंकि याची को यहां उपरोक्त वर्णित अधिनिर्णय के मार्ग-दर्शक सिद्धांतों के निबंधनानुसार लगाया गया था इसलिए वह ऐसे किसी सेवा फायदों का हकदार नहीं है जो अन्यथा नियमित कर्मचारी को उपलब्ध है ।

6. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री नरेश वर्मा ने दृढ़तापूर्वक यह तर्क दिया कि याची की सेवाएं नियमित न करने की प्रत्यर्थी बैंक की कार्रवाई पर्याप्त मनमाना और अवैध है तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अतिक्रमण में है । उन्होंने यह दलील दी कि याची ने बिना किसी अंतराल के लगातार 36 वर्षों तक प्रत्यर्थी बैंक की सेवा की और इस प्रकार वह विनियमित किए जाने का पात्र है/था । याची के विद्वान् काउंसेल ने बलपूर्वक यह दलील दी कि प्रत्यर्थी बैंक कानून का सृजन होने के आधार पर लोककृत्य का पालन कर रहा है/कृत्य कर रहा है और एक कल्याणकारी राज्य की प्रास्थिति अर्जित की है और उससे मनमाने ढंग से कार्य करने की प्रत्याशा नहीं है बल्कि उससे अपने कर्मचारियों के हित में निश्चय करने की प्रत्याशा है । उसके द्वारा किए जा रहे तर्कों के दौरान, उन्होंने यह प्रदर्शित करने के लिए इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के निबंधनानुसार उसके द्वारा फाइल किए गए अभ्यावेदन पर प्रत्यर्थियों द्वारा पारित तारीख 5 जून, 2010 के आक्षेपित आदेश की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया कि तारीख 5 जून, 2010 का आदेश पारित करते समय प्रत्यर्थी बैंक द्वारा याची को कभी कोई सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था । उन्होंने यह दलील दी कि स्वयं तारीख 5 जून, 2010 के आक्षेपित आदेश के परिशीलन मात्र से यह इंगित होता है कि आदेश इस तथ्य पर

विचार किए बिना गलत ढंग से आदेश पारित किया गया कि याची 36 वर्षों से प्रत्यर्थी बैंक की लगातार सेवा की ।

7. धीरज वशिष्ट, अधिवक्ता की सम्यक् सहायता के साथ श्री अजय कुमार, विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 24 फरवरी, 2010 के निर्णय के अनुपालन में प्रत्यर्थी पंजाब नेशनल बैंक द्वारा पारित तारीख 5 जून, 2010 के आदेश का समर्थन किया । श्री सूद ने बलपूर्वक यह तर्क दिया कि याची की सेवाएं इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उसकी नियुक्ति शास्त्री अधिनिर्णय के पैरा 123, देसाई अधिनिर्णय के पैरा 5.191 और समेकित मासवार मजदूरी पर समय-समय पर बैंक और उसके कर्मकारों के बीच किए गए द्विपक्षीय समझौतों के उपबंधों के अधीन बैंक के परिसर की सफाई करने के लिए अंशकालिक झाड़ूकश के रूप में की गई थी । उन्होंने बलपूर्वक यह दलील दी कि याची की नियुक्ति बैंक के नियमित कर्मचारी के रूप में नहीं की थी और इस प्रकार उसकी सेवाओं और मजदूरी की तुलना विशेषकर भर्ती और प्रोन्नति नियमों का पालन करते हुए प्रत्यर्थी बैंक द्वारा विनियमित/नियमित कर्मचारियों के साथ नहीं की जा सकती । यह दलील दी गई कि चूंकि याची की नियुक्ति और मजदूरी शास्त्री/देसाई अधिनिर्णयों के अधीन नियमित है/थे इसलिए उसकी सेवाएं प्रत्यर्थी बैंक द्वारा नियमित नहीं की जा सकती । श्री सूद ने दृढ़तापूर्वक यह तर्क किया कि याची बैंक का नियमित कर्मचारी नहीं है और अधिक से अधिक उसे कर्मकार कहा जा सकता है । उन्होंने आगे यह तर्क किया कि कर्मकार के नियोजन/सेवा के अवधारण विवाद के मामले में, शास्त्री अधिनिर्णय और बैंकों और उसके कर्मकारों के बीच किए गए द्विपक्षीय समझौतों को ध्यान में रखते हुए, औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के उपबंधों के अधीन मामले का निस्तारण किया जाए और इस प्रकार वर्तमान याची द्वारा फाइल की गई याचिका संधार्य नहीं है क्योंकि औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन उपबंधों के अनुसार याची को समुचित न्यायालय में आवेदन करने का अनुकल्पी प्रभावी उपाय उपलब्ध है । उन्होंने बलपूर्वक यह दलील दी कि चूंकि याची को पूर्वोक्त अधिनिर्णयों के निबंधनानुसार विशुद्धतः अस्थायी आधार पर लगाया गया था इसलिए याची के पास विनियमितीकरण का दावा करने का किसी भी प्रकार को कोई अधिकार नहीं है ।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और मामले के अभिलेख का परिशीलन किया ।

9. चूंकि प्रत्यर्थी का प्रतिनिधित्व कर रहे काउंसेल द्वारा इस याचिका की संधार्यता से संबंधित विनिर्दिष्ट आक्षेप किए गए हैं इसलिए मामले के गुणागुण पर विचार करने के पूर्व पहली नजर में संधार्यता के मुद्दे को विनिश्चित करना इस न्यायालय के लिए उचित होगा ।

10. अभिलेख पर उपलब्ध अभिवचनों के सावधानीपूर्वक परिशीलन से स्पष्टतः यह इंगित होता है कि याची को वर्ष 1973 में अर्थात् 1 जनवरी, 1973 से झाड़ूकश के रूप में लगाया गया था और उस समय उसे 30/- रुपए प्रतिमास की दर से वेतन संदत्त किया गया था । यह भी अविवादित है कि याची अपनी सेवानिवृत्ति अर्थात् 30 अप्रैल, 2010 तक अपनी आरंभिक नियुक्ति अर्थात् 1 जनवरी, 1973 से प्रत्यर्थी बैंक के पास लगातार झाड़ूकश के रूप में कार्य कर रहा था । याची की स्वयं स्वीकृति के अनुसार, वह इस याचिका के फाइल करने के समय पर अर्थात् 25 जुलाई, 2010 को 1,500/- रुपए प्रतिमास का वेतन पा रहा था । अभिलेख के अनुसार, याची सेवा से 30 अप्रैल, 2010 से सेवानिवृत्त हो गया जबकि यह याचिका 25 अप्रैल, 2010 को फाइल की गई ।

11. इस न्यायालय ने एकमात्र यह सुनिश्चित करने की दृष्टि से कि याची के प्रति कोई अन्याय न हो, फाइल पर उपलब्ध संपूर्ण अभिलेख का परिशीलन किया किंतु उसे इस तथ्य से संबंधित कोई दस्तावेज हाथ नहीं लगा कि याची को नियमित आधार पर प्रत्यर्थी बैंक द्वारा लगाया गया था बल्कि अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेज के परिशीलन से स्पष्टतः यह पता चला कि प्रत्यर्थी बैंक द्वारा शास्त्री अधिनिर्णय के पैरा 123, देसाई अधिनिर्णय के पैरा 5.191 और बैंकों और उसके कर्मकारों के बीच किए गए द्विपक्षीय समझौते जिसमें समय-समय पर समेकित माहवार मजदूरी, जिसे द्विपक्षीय समझौते के निबंधनानुसार समय-समय पर आगे बढ़ाई जाती थी, के उपबंधों के अधीन बैंक के परिसरों की सफाई करने के लिए अंशकालिक झाड़ूकश के रूप में याची को लगाया गया था । अभिलेख से यह भी पता चलता है कि याची सप्ताह में छह घंटे से कम का अंशकालिक कर्मचारी के रूप में कार्य किया करता था । प्रत्यर्थियों ने यह प्रदर्शित करने के लिए कतिपय बैंककारी कंपनियों और उनके कर्मकारों के बीच औद्योगिक विवादों में अखिल भारतीय औद्योगिक अधिकरण (बैंक विवाद) को अभिलेख पर प्रस्तुत किया कि अपनी शिकायतों को दूर करने के लिए याची को उपलब्ध समुचित उपचार यदि कोई है तो वह औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अधीन है न कि भारत

के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन फाइल की गई इस रिट याचिका के माध्यम से ।

12. याची ने प्रत्यर्थी बैंक द्वारा फाइल उत्तर का न तो कोई प्रत्युत्तर फाइल किया न ही इस तथ्य से संबंधित अभिलेख पर कोई दस्तावेज उपलब्ध कराया कि उसे नियमित आधार पर प्रत्यर्थी बैंक द्वारा लगाया गया था और उसकी सेवाएं यथापूर्वोक्त शास्त्री/देसाई अधिनिर्णय और द्विपक्षीय समझौतों द्वारा विनियमित नहीं हैं ।

13. प्रत्यर्थी बैंक द्वारा फाइल उत्तर से उपाबंध आर. ए. और आर. बी. के परिशीलन से स्पष्टतः यह प्रतिबिम्बित होता है कि कतिपय बैंककारी कंपनियों और उनके कर्मकारों के बीच विवाद का विनिश्चय करने के लिए औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन अखिल भारतीय औद्योगिक अधिकरण (बैंक विवाद) अधिनिर्णय है और इस प्रकार बैंक और उनके कर्मकार इस अधिनिर्णय के उपबंधों द्वारा आबद्ध हैं । उपरोक्त के अलावा बैंक और उसके कर्मकारों के बीच किए गए द्विपक्षीय समझौते हैं जो दोनों पक्षकारों पर आबद्ध हैं । प्रत्यर्थियों ने उपाबंध आर. बी. द्वारा यह प्रमाणित करने के लिए कि कर्मकारों और बैंक के बीच विवाद, यदि कोई है का न्याय निर्णयन औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के निबंधनानुसार किया जाए, बैंककारी कंपनियों और उनके कर्मकारों के बीच किए गए द्विपक्षीय समझौतों को अभिलेख पर प्रस्तुत किया । इस न्यायालय को उपाबंध आर. ए. और आर. बी. के परिशीलन के पश्चात् किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं है कि कर्मकारों और बैंककारी कंपनी के बीच विवाद यदि कोई है, का विनिश्चय औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के उपबंध के अनुसार किया जाना चाहिए ।

14. पूर्वोक्त उपाबंधों के सावधानीपूर्वक परिशीलन से यह इंगित होता है कि चूंकि द्विपक्षीय समझौते भारतीय बैंक संघ द्वारा प्रतिनिधि के रूप में 54-वर्ग "क" बैंक के प्रबंध मंडल और अखिल भारतीय बैंक कर्मचारी संगम और बैंक कर्मचारी राष्ट्रीय परिसंघ द्वारा उनके कर्मकारों के प्रतिनिधि के रूप में उनके बीच किए गए अतः, समझौते की शर्तें और निबंधन पक्षकारों पर आबद्ध हैं ।

15. विभिन्न बैंकों के प्रबंध मंडल और उनके कर्मकारों के बीच हुए पूर्वोक्त समझौते की गहन संवीक्षा से यह प्रकट होता है कि समझौता औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2(त) और धारा 18(1) के

साथ पठित औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम, 1957 के नियम 58 के अधीन किया गया है । यह भी इंगित होता है कि 52 बैंक समझौते के पक्षकार थे जो स्वीकार्यतः सुसंगत समय पर वर्ग "क" बैंक थे और समझौते के उक्त ज्ञापन में अनुसूची 1 में सूचीबद्ध थे । कतिपय बैंककारी कंपनियों और उनके कर्मकारों के बीच औद्योगिक विवादों के समझौते के खंड 4.5 में स्पष्टतः यह इंगित है कि अंशकालिक कर्मकारों को देसाई अधिनिर्णय के पैरा 5.191 के निबंधनानुसार लगाया गया है जो प्रत्यर्थी बैंक का विनिर्दिष्ट मामला है । पूर्वोक्त विमर्शित शास्त्री अधिनिर्णय, देसाई अधिनिर्णय और द्विपक्षीय समझौतों में केवल बैंकों द्वारा नियोजित कर्मकारों की शर्तों और निबंधनों का उल्लेख है ।

16. तारीख 10 अप्रैल, 2002 के द्विपक्षीय समझौते के परिशीलन मात्र से स्पष्टतः यह प्रदर्शित होता है कि यहां उपरोक्त निर्दिष्ट समझौता औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2(त) और धारा 18(1) के साथ पठित औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम, 1957 के नियम 58 के अधीन किया गया था और इसके पश्चात् बैंकों द्वारा नियोजित कर्मकारों की सेवा शर्तों को विनियमित करने वाले पूर्वोक्त शास्त्री/देसाई अधिनिर्णय पारित किए गए । किंतु असलियत यह है कि पूर्वोक्त समझौता औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन बैंकों के प्रबंध मंडल और उनके कर्मकारों के बीच किया गया है जिसका यह अर्थ है कि कर्मकार होते हुए वर्तमान याची को उपलब्ध अनुकल्पी उपचार, यदि कोई है, तो वह औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अधीन यथा परिकल्पित समुचित प्राधिकारियों के समक्ष आवेदन करना है । कर्मकारों के अधिकारों को विनिर्दिष्ट रूप से पूर्वोक्त अधिनियम के अधीन परिभाषित किया गया है और अधिनियम के उपबंधों को प्रवृत्त करने के लिए पूरी व्यवस्था की गई है । अतः, इस न्यायालय का यह मत है कि प्रत्यर्थी बैंक की ओर से दी गई दलीलों में पर्याप्त बल है कि यह याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन संधार्य नहीं है चूंकि याची की सेवा शर्तें शास्त्री अधिनिर्णय और देसाई अधिनिर्णय द्वारा शासित हैं/थीं । अतः, याची की शिकायत के प्रतितोष के लिए समुचित उपचार यदि कोई है, औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन है न कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलंब लेकर । जहां तक इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 24 अप्रैल, 2010 के निर्णय के अनुपालन में प्रत्यर्थी बैंक द्वारा पारित तारीख 5 जून, 2010 के

आदेश का संबंध है, इस न्यायालय ने याची की ओर से उठाए गए तर्कों की असलियत और सत्यता सुनिश्चित करने के लिए आदेश तारीख 5 जून, 2010 की बहुत सावधानीपूर्वक परीक्षा की कि तारीख 5 जून, 2010 का आदेश पारित करते समय उसे सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था और यह पाया कि याची की ओर से दी गई पूर्वोक्त दलील में कोई बल नहीं है । इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 24 फरवरी, 2010 के निर्णय के अनुसरण में, याची कालू राम ने 1973 से नियमित नामावली में उसे मानते हुए और सभी सेवांत फायदे अर्थात् वेतन, वेतन का बकाया, सेवानिवृत्ति फायदे और पेंशन आदि उसे देने का अनुरोध करते हुए तारीख 16 मार्च, 2010 को विस्तृत अभ्यावेदन फाइल किया । प्रत्यर्थी बैंक ने याची द्वारा फाइल तारीख 16 मार्च, 2010 के अभ्यावेदन पर विचार करते हुए मामले के प्रत्येक पहलू पर विचार किया और याची की ओर से उठाए गए सभी मुद्दों का उत्तर दिया और इस प्रकार यह न्यायालय याची द्वारा प्रस्तुत नहीं सुने जाने की दलील को स्वीकार करने में असमर्थ है । उस आदेश में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया है कि चूंकि याची को शास्त्री अधिनिर्णय/द्विपक्षीय समझौते के अनुसार समय-समय पर समेकित मजदूरी संदत्त की जा रही थी, द्विपक्षीय समझौते/देसाई अधिनिर्णय में नियमित नामावली में समेकित मजदूरी पर लगाए गए अंशकालिक कर्मकारों की सेवाओं को विनियमित करने का कोई उपबंध नहीं है । यह न्यायालय प्रत्यर्थियों द्वारा पारित तारीख 5 जून, 2010 के आदेश में कोई अवैधता नहीं पाता जिसके द्वारा याची द्वारा उसके विनियमितीकरण के लिए प्रस्तुत दावे को प्रत्यर्थी बैंक द्वारा नामंजूर कर दिया गया । चूंकि अभिलेख पर सम्यक् रूप से यह साबित होता है कि याची की नियुक्ति अंशकालिक झाड़ूकश के रूप में शास्त्री अधिनिर्णय और द्विपक्षीय संशोधनों के निबंधनानुसार की गई थी । इसलिए इस न्यायालय को प्रत्यर्थी बैंक की ओर से दी गई दलील को स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि याची को उपचार, यदि कोई है, तो वह औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन है । एक बार यह साबित हो जाने पर कि बैंक द्वारा लगाए गए कर्मकारों की सेवा-शर्तें शास्त्री अधिनिर्णय और द्विपक्षीय समझौते द्वारा शासित हो जो स्वीकार्यतः औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अधीन पारित है तो इस न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने के सिवाय कोई और विकल्प नहीं है कि यह याचिका संधार्य नहीं है और याची की शिकायत के प्रतितोष के लिए उपचार, यदि कोई है, तो वह औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन उपलब्ध

है । चूंकि तारीख 10 अप्रैल, 2002 का द्विपक्षीय समझौता औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2(त) और धारा 18(1) के साथ पठित औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम, 1957 के नियम 58 के अधीन किया गया है इसलिए, कर्मकारों और बैंक के बीच विवाद यदि कोई है, का समाधान औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन न कि रिट याचिका के माध्यम से अपेक्षित हैं ।

17. अभिलेख पर उपलब्ध अभिवचनों के परिशीलन के पश्चात्, यह विवादित नहीं है कि याची औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन कर्मकार है और इस प्रकार उसके पास औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन अनुकल्पी उपचार है । तथापि, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, याची की सेवाएं 30 अप्रैल, 2010 को 60 वर्ष पूरा करने के पश्चात् समाप्त कर दी गई है । परिणामतः, पूर्वोक्त की गई विस्तृत चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 24 फरवरी, 2010 के निर्णय के निबंधनानुसार प्रत्यर्थी बैंक द्वारा पारित तारीख 5 जून, 2010 के आदेश (उपाबंध पी-5) में कोई अवैधता या कमी नहीं पाता और इस प्रकार इसे कायम रखता है ।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह रिट याचिका याची को औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के उपबंधों के निबंधनानुसार समुचित न्यायालय में आवेदन की स्वतंत्रता सुरक्षित रखते हुए, संधार्य न होने के कारण खारिज की जाती है । खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

पा.

———————

संसद् के अधिनियम

हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956[1]

(1956 का अधिनियम संख्यांक 32)

[25 अगस्त, 1956]

हिन्दुओं में अप्राप्तवयता और संरक्षकता से संबंधित विधि के कतिपय भागों को संशोधित और संहिताबद्ध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के सातवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हों :–

1. **संक्षिप्त नाम और विस्तार** – (1) यह अधिनियम हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 कहा जा सकेगा ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है और यह उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित उन हिन्दुओं को भी लागू है जो उक्त राज्यक्षेत्र के बाहर हों ।

2. **यह अधिनियम 1890 के अधिनियम 8 का अनुपूरक होगा** – इस अधिनियम के उपबंध संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 के अतिरिक्त न कि, एतस्मिन्पश्चात् अभिव्यक्तत: उपबंधित के सिवाय, उसके अल्पीकारक होंगे ।

3. **अधिनियम का लागू होना** – (1) यह अधिनियम लागू है –

(क) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो हिन्दू धर्म के किसी भी रूप या विकास के अनुसार, जिसके अंतर्गत वीरशैव, लिंगायत अथवा ब्राह्म-समाज, प्रार्थना समाज या आर्य समाज के अनुयायी भी आते हैं, धर्मत: हिन्दू हो ;

(ख) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो धर्मतः बौद्ध, जैन या सिक्ख हो ; तथा

(ग) ऐसे किसी भी अन्य व्यक्ति को जो उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित हो और धर्मत: मुस्लिम,

---

[1] इस अधिनियम का विस्तार 1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 तथा अनुसूची 1 द्वारा गोवा, दमण और दीव पर और पांडिचेरी (विधि-विस्तारण) अधिनियम, 1968 (1968 का 26) की धारा 3 तथा अनुसूची द्वारा पांडिचेरी पर किया गया है ।

क्रिश्चियन, पारसी या यहूदी न हो, जब तक यह साबित न कर दिया जाए कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो ऐसा कोई भी व्यक्ति एतस्मिन् उपबन्धित किसी भी बात के बारे में हिन्दू विधि या उस विधि के भागरूप किसी रूढ़ि या प्रथा द्वारा शासित न होता ।

स्पष्टीकरण – निम्नलिखित व्यक्ति धर्मत:, यथास्थिति, हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख है –

(i) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता दोनों ही धर्मतः हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हों ;

(ii) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता में से कोई एक धर्मतः बौद्ध, हिन्दू, जैन या सिक्ख हो और जो उस जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुम्ब के सदस्य के रूप में पला हो जिसका वह माता या पिता सदस्य है या था ; तथा

(iii) कोई भी ऐसा व्यक्ति जो हिन्दू, जैन या सिक्ख धर्म में संपरिवर्तित या प्रतिसंपरिवर्तित हो गया हो ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई भी बात किसी ऐसी जनजाति के सदस्यों को, जो संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (25) के अर्थ के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति हो, लागू न होगी जब तक कि केन्द्रीय सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अन्यथा निर्दिष्ट न कर दे ।

[1][(2क) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी इस अधिनियम की कोई बात पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्र के रिनान्कैंटों को लागू नहीं होगी ।]

(3) इस अधिनियम के किसी भी प्रभाग में आए हुए "हिन्दू" पद का ऐसा अर्थ लगाया जाएगा मानो उसके अंतर्गत ऐसा व्यक्ति आता हो जो यद्यपि धर्मतः हिन्दू नहीं है, तथापि ऐसा व्यक्ति है जिसे यह अधिनियम इस धारा में अंतर्विष्ट उपबंधों के आधार पर लागू होता है ।

4. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, –

(क) "अप्राप्तवय" से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने अठारह वर्ष की आयु पूरी न की हो ;

---

[1] पांडिचेरी को लागू होने के सम्बन्ध में 1968 के अधिनियम सं. 26 को धारा 3 तथा अनुसूची द्वारा उपधारा (2) के पश्चात् यह उपधारा अंत: स्थापित की गई है ।

(ख) "संरक्षक" से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जिसकी देखरेख में किसी अप्राप्तवय का शरीर या उसकी सम्पत्ति या उसका शरीर और सम्पत्ति दोनों हों और इसके अंतर्गत आते हैं –

(i) नैसर्गिक संरक्षक,

(ii) अप्राप्तवय के पिता या माता की विल द्वारा नियुक्त संरक्षक,

(iii) न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक, तथा

(iv) किसी प्रतिपाल्य अधिकरण से संबंध रखने वाली किसी अधिनियमिति के द्वारा या अधीन संरक्षक की हैसियत में कार्य करने के लिए सशक्त व्यक्ति ;

(ग) "नैसर्गिक संरक्षक" से अभिप्रेत है धारा 6 में वर्णित संरक्षकों में से कोई भी संरक्षक ।

5. **अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव** – इस अधिनियम में अभिव्यक्ततः उपबन्धित के सिवाय –

(क) हिन्दू विधि का कोई भी ऐसा शास्त्र-वाक्य, नियम, या निर्वचन, या उस विधि की भाग-रूप कोई भी रूढ़ि या प्रथा, जो इस अधिनियम के प्रारम्भ के अव्यवहित पूर्व रही हो ऐसे किसी भी विषय के बारे में, जिसके लिए इस अधिनियम में उपबन्ध किया गया है, प्रभावहीन हो जाएगी ;

(ख) कोई भी ऐसी अन्य विधि जो इस अधिनियम के प्रारम्भ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त रही हो वहां तक प्रभावहीन हो जाएगी जहां तक वह इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट उपबन्धों में से किसी से असंगत हो ।

6. **हिन्दू अप्राप्तवय के नैसर्गिक संरक्षक** – हिन्दू अप्राप्तवय के नैसर्गिक संरक्षक अप्राप्तवय के शरीर के बारे में और (अविभक्त कुटुम्ब की सम्पत्ति में उसके अविभक्त हित को छोड़कर) उसकी सम्पत्ति के बारे में भी, निम्नलिखित हैं –

(क) किसी लड़के या अविवाहिता लड़की की दशा में – पिता और उसके पश्चात् माता : परन्तु जिस अप्राप्तवय ने पांच वर्ष की आयु पूरी न कर ली हो उसकी अभिरक्षा मामूली तौर पर माता के हाथ में होगी ;

(ख) अधर्मज लड़के या अधर्मज अविवाहिता लड़की की दशा में –

माता और उसके पश्चात् पिता ;

(ग) विवाहिता लड़की की दशा में – पति

परन्तु कोई भी व्यक्ति यदि –

(क) वह हिन्दू नहीं रह गया है ; या

(ख) वह वानप्रस्थ या पति या सन्यासी होकर संसार को पूर्णतः और अन्तिम रूप से त्याग चुका है,

तो इस धारा के उपबन्धों के अधीन अप्राप्तवय के नैसर्गिक संरक्षक के रूप में कार्य करने का हकदार न होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में "पिता" और "माता" पदों के अन्तर्गत सौतेला पिता और सौतेली माता नहीं आते ।

7. **दत्तक पुत्र की नैसर्गिक संरक्षकता** – ऐसे दत्तक पुत्र की, जो अप्राप्तवय हो, नैसर्गिक संरक्षकता दत्तक ग्रहण पर दत्तक पिता को और उसके पश्चात् दत्तक माता को संक्रान्त हो जाती है ।

8. **नैसर्गिक संरक्षक की शक्तियां** – (1) इस धारा के उपबन्धों के अध्यधीन यह है कि किसी भी हिन्दू अप्राप्तवय का नैसर्गिक संरक्षक उन सब कार्यों को करने की शक्ति रखता है जो उस अप्राप्तवय के फायदे के लिए या उस अप्राप्तवय की सम्पदा के आपन, संरक्षण या फायदे के लिए आवश्यक या युक्तियुक्त और उचित हों, किन्तु संरक्षक किसी भी दशा में अप्राप्तवय को वैयक्तिक प्रसंविदा के द्वारा आबद्ध नहीं कर सकता ।

(2) नैसर्गिक संरक्षक न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा के बिना –

(क) न तो अप्राप्तवय की स्थावर सम्पत्ति के किसी भी भाग को बन्धक या भारित अथवा विक्रय, दान या विनिमय द्वारा या अन्यथा अन्तरित करेगा ; और

(ख) न ऐसी सम्पत्ति के किसी भी भाग को पांच वर्ष से अधिक की अवधि के लिए या जिस तारीख को अप्राप्तवय प्राप्तवयता में प्रवेश करेगा उस तारीख से एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए पट्टे पर देगा ।

(3) नैसर्गिक संरक्षक द्वारा उपधारा (1) या उपधारा (2) के उल्लंघन में किया गया स्थावर सम्पत्ति का कोई भी व्ययन, अप्राप्तवय की या उससे

व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति की प्रेरणा पर शून्यकरणीय होगा ।

(4) कोई भी न्यायालय नैसर्गिक संरक्षक की उपधारा (2) में वर्णित कार्यों में से किसी को भी करने की अनुज्ञा न देगा सिवाय उस दशा में जब कि वह आवश्यक हो या अप्राप्तवय की सुव्यक्त भलाई के लिए हो ।

(5) उपधारा (2) के अधीन न्यायालय की अनुज्ञा अभिप्राप्त करने के आवेदन को और उसके बारे में संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8) सर्वथा ऐसे लागू होगा मानो वह आवेदन उस अधिनियम की धारा 29 के अधीन न्यायालय की अनुज्ञा अभिप्राप्त करने के लिए आवेदन हो, और विशिष्टत: :–

(क) आवेदन से सम्बन्धित कार्यवाहियां उस अधिनियम के अधीन, उसकी धारा 4क के अर्थ के भीतर कार्यवाहियां समझी जाएंगी ;

(ख) न्यायालय उस प्रक्रिया का अनुपालन करेगा और उसे वे शक्तियां प्राप्त होंगी जो उस अधिनियम की धारा 31 की उपधाराओं (2), (3) और (4) में विनिर्दिष्ट हैं ; तथा

(ग) न्यायालय के ऐसे आदेश की अपील, जो नैसर्गिक संरक्षक को इस धारा की उपधारा (2) में वर्णित कार्यों में से किसी भी कार्य को करने की अनुज्ञा देने से इनकार करे, उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय के विनिश्चयों की अपीलें मामूली तौर पर होती हैं ।

(6) इस धारा में "न्यायालय" से वह नगर सिविल न्यायालय या ऐसा जिला न्यायालय या संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8) की धारा 4क के अधीन सशक्त ऐसा न्यायालय अभिप्रेत है जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर वह स्थावर सम्पत्ति जिसके बारे में आवेदन किया गया है, स्थित हो और जहां कि स्थावर सम्पत्ति ऐसे एक से अधिक न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर स्थित हो वहां वह न्यायालय अभिप्रेत है, जिसकी स्थानीय सीमाओं की अधिकारिता के भीतर उस सम्पत्ति का कोई भी प्रभाग स्थित हो ।

9. **वसीयती संरक्षक और उनकी शक्तियां –** (1) ऐसा हिन्दू पिता जो अपने अप्राप्तवय धर्मज अपत्यों के नैसर्गिक संरक्षक के तौर पर कार्य करने का हकदार हो, उनमें से किसी के लिए भी उस अप्राप्तवय के शरीर

के या उस अप्राप्तवय की (धारा 12 में निर्दिष्ट अविभक्त हित से भिन्न) सम्पत्ति के या दोनों के बारे में विल द्वारा संरक्षक नियुक्त कर सकेगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन की गई नियुक्ति प्रभावी नहीं होगी यदि पिता माता से पूर्व मर जाए किन्तु यदि माता विल द्वारा किसी व्यक्ति को संरक्षक नियुक्त किए बिना मर जाए तो वह नियुक्ति पुनरुज्जीवित हो जाएगी ।

(3) ऐसी हिन्दू विधवा, जो अपने अप्राप्तवय धर्मज अपत्यों के नैसर्गिक संरक्षक के तौर पर कार्य करने की हकदार हो और ऐसी हिन्दू माता, जो अपने अप्राप्तवय धर्मज अपत्यों के नैसर्गिक संरक्षक के तौर पर कार्य करने की इस कारण हकदार हो कि पिता नैसर्गिक संरक्षक के तौर पर कार्य करने के लिए निर्हकित हो गया है, उनमें से किसी के लिए भी उस अप्राप्तवय के शरीर के या उस अप्राप्तवय के शरीर या (धारा 12 में निर्दिष्ट अविभक्त हित से भिन्न) सम्पत्ति के या दोनों के बारे में विल द्वारा संरक्षक नियुक्त कर सकेगी ।

(4) ऐसी हिन्दू माता, जो अपने अप्राप्तवय अधर्मज अपत्यों के नैसर्गिक संरक्षक के तौर पर कार्य करने की हकदार हो, उनमें से किसी के लिए भी, उस अप्राप्तवय के शरीर के या उस अप्राप्तवय की सम्पत्ति के या दोनों के बारे में विल द्वारा संरक्षक नियुक्त कर सकेगी ।

(5) विल द्वारा ऐसे नियुक्त किए गए संरक्षक को अधिकार है कि वह अप्राप्तवय के, यथास्थिति, पिता या माता की मृत्यु के पश्चात् अप्राप्तवय के संरक्षक के तौर पर कार्य करे और इस अधिनियम के अधीन नैसर्गिक संरक्षक के सब अधिकारों का, उस विस्तार तक और उन निबंधनों के अध्यधीन, यदि कोई हो, जो इस अधिनियम और उस विल में विनिर्दिष्ट हों, प्रयोग करे ।

(6) विल द्वारा ऐसे नियुक्त किए गए संरक्षक के अधिकार जहां कि अप्राप्तवय लड़की है, उसके विवाह हो जाने पर समाप्त हो जाएंगे ।

10. **सम्पत्ति के संरक्षक के तौर पर कार्य करने के लिए अप्राप्तवय की असमर्थता** – अप्राप्तवय किसी भी अप्राप्तवय की सम्पत्ति के संरक्षक के तौर पर कार्य करने के लिए अक्षम होगा ।

11. **वस्तुतः संरक्षक अप्राप्तवय की सम्पत्ति के बारे में संव्यवहार नहीं करेगा** – इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के पश्चात् कोई भी व्यक्ति केवल

इस आधार पर कि वह अप्राप्तवय का वस्तुतः संरक्षक है, उस हिन्दू अप्राप्तवय की सम्पत्ति का व्ययन या संव्यवहार करने का हकदार न होगा ।

12. **अविभक्त कुटुम्ब की सम्पत्ति में अप्राप्तवय के अविभक्त हित के लिए संरक्षक का नियुक्त न किया जाना** – जहां कि कोई अप्राप्तवय अविभक्त कुटुम्ब की सम्पत्ति में अविभक्त हित रखता हो और वह सम्पत्ति कुटुम्ब के वयस्थ सदस्य के प्रबंध के अधीन हो वहां ऐसे अविभक्त हित के बारे में अप्राप्तवय के लिए कोई संरक्षक नियुक्त नहीं किया जाएगा :

परंतु इस धारा की कोई भी बात ऐसे हित के बारे में संरक्षक नियुक्त करने की उच्च न्यायालय की अधिकारिता पर प्रभाव डालने वाली न समझी जाएगी ।

13. **अप्राप्तवय का कल्याण सर्वोपरि होगा** – (1) न्यायालय द्वारा किसी भी व्यक्ति के किसी हिन्दू अप्राप्तवय का संरक्षक नियुक्त या घोषित किए जाने में अप्राप्तवय के कल्याण पर सर्वोपरि ध्यान रखा जाएगा ।

(2) यदि किसी भी व्यक्ति के विषय में न्यायालय की यह राय हो कि उसके संरक्षक होने में अप्राप्तवय का कल्याण न होगा तो वह व्यक्ति इस अधिनियम के उपबन्धों के आधार पर या ऐसी किसी भी विधि के आधार पर, जो हिन्दुओं में विवाहार्थ संरक्षकता के बारे में हो, संरक्षकता का हकदार न होगा ।

संसद् के अधिनियम

प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961

(1961 का अधिनियम संख्यांक 53)

[12 दिसंबर, 1961]

कतिपय स्थापनों में शिशु जन्म के पूर्व और पश्चात् की कतिपय कालावधियों में स्त्रियों के नियोजन को विनियमित करने तथा प्रसूति प्रसुविधा और कतिपय अन्य प्रसुविधाओं का उपबन्ध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के बारहवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

(1) **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ** – यह अधिनियम प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961 कहा जा सकेगा ।

(2) इसका विस्तार [1]*** संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख[2] को प्रवृत्त होगा, जो –

[3][(क) खानों के संबंध में और किसी ऐसे अन्य स्थापन के संबंध में, जिसमें लोगों को घुड़सवारी, कलाबाजी और अन्य करतबों के प्रदर्शन के लिए नियोजित किया जाता है, केन्द्रीय सरकार द्वारा, तथा]

(ख) किसी राज्य के अन्य स्थापनों के संबंध में, उस राज्य सरकार द्वारा, शासकीय राजपत्र में इस निमित्त अधिसूचित की जाए ।

2. **अधिनियम का लागू होना** – [4][(1) यह प्रथमत: :–

(क) हर ऐसे स्थापन को जो कारखाना, खान या बागान है, जिसके अन्तर्गत सरकार का ऐसा कोई स्थापन भी है और प्रत्येक ऐसे

---

[1] 1970 के अधिनियम संख्यांक 51 की धारा 2 तथा अनुसूची द्वारा (1.9.1971 से) "जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय" शब्दों का लोप किया गया ।

[2] 1 नवम्बर, 1963 ; देखिए अधिसूचना संख्यांक आ. का. 2920, तारीख 5 अक्तूबर, 1963, भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), भाग 2, अनुभाग 3(ii), पृष्ठ 3735.

[3] 1973 के अधिनियम संख्यांक 52 की धारा 2 द्वारा (1.3.1975 से) खंड (क) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1988 के अधिनियम संख्यांक 61 की धारा 2 द्वारा (10.1.1989 से) उपधारा (1) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

स्थापन को लागू होता है जिसमें लोगों को घुड़सवारी, कलाबाजी और अन्य करतबों के प्रदर्शन के लिए नियोजित किया जाता है ;

(ख) किसी राज्य में दुकानों और स्थापनों के संबंध में तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अर्थ के अन्तर्गत ऐसी प्रत्येक दुकान या स्थापन को लागू होता है जिसमें दस या अधिक व्यक्ति नियोजित हैं या पूर्ववर्ती बारह मास के किसी दिन नियोजित थे :]

परन्तु राज्य सरकार, केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन से, ऐसा करने के अपने आशय की दो मास से अन्यून की सूचना देने के पश्चात् राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, घोषित कर सकेगी कि इस अधिनियम के सब या कोई उपबंध औद्योगिक, वाणिज्यिक, कृषिक या अन्य प्रकार के किसी अन्य स्थापन या स्थापनों के वर्ग को भी लागू होंगे ।]

(2) [1][[2][धारा 5क और धारा 5ख] में जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात] किसी ऐसे कारखाने या अन्य स्थापन को लागू न होगी जिसे कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (1948 का 34) के उपबंध तत्समय लागू होते हों ।

3. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "समुचित सरकार" से ऐसे स्थापन के संबंध में, जो खान है [3][या ऐसा स्थापन है जिसमें लोगों को घुड़सवारी, कलाबाजी और अन्य करतबों के प्रदर्शन के लिए नियोजित किया जाता है, केन्द्रीय सरकार और किसी अन्य स्थापन के संबंध में राज्य सरकार अभिप्रेत है ;]

(ख) "शिशु" के अंतर्गत मृतजात शिशु भी है ;

(ग) "प्रसव" से शिशु का जन्म अभिप्रेत है ;

(घ) "नियोजक" से –

(i) किसी ऐसे स्थापन के संबंध में जो सरकार के नियंत्रण के अधीन है, कर्मचारियों के पर्यवेक्षण और नियंत्रण के लिए सरकार द्वारा

---

[1] 1972 के अधिनियम संख्यांक 21 की धारा 2 द्वारा "इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम संख्यांक 53 की धारा 2 द्वारा (1.5.1976 से) "धारा 5क" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1973 के अधिनियम संख्यांक 52 की धारा 4 द्वारा (1.3.1975 से) अंत:स्थापित ।

नियुक्त व्यक्ति या प्राधिकारी, या जहां कोई भी व्यक्ति या प्राधिकारी ऐसे नियुक्त नहीं है वहां विभागाध्यक्ष, अभिप्रेत है ;

(ii) किसी स्थानीय प्राधिकारी के अधीन के स्थापन के संबंध में, कर्मचारियों के पर्यवेक्षण और नियंत्रण के लिए ऐसे प्राधिकारी द्वारा नियुक्त व्यक्ति या जहां कोई भी व्यक्ति ऐसे नियुक्त नहीं है, वहां उस स्थानीय प्राधिकारी का मुख्य कार्यपालक आफिसर अभिप्रेत है ;

(iii) किसी अन्य दशा में, वह व्यक्ति या वह प्राधिकारी जो स्थापन के कार्यकलाप पर अंतिम नियंत्रण रखता है और जहां उक्त कार्यकलाप किसी अन्य व्यक्ति को सौंपा गया है, चाहे वह प्रबंधक, प्रबंध-निदेशक, प्रबंध-अभिकर्ता कहलाता है या किसी अन्य नाम से पुकारा जाता है, वहां ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है ;

[1][(ङ) "स्थापन" से निम्नलिखित अभिप्रेत है –

(i) कोई कारखाना ;

(ii) कोई खान ;

(iii) कोई बागान ;

(iv) कोई ऐसा स्थापन जिसमें लोगों को घुड़सवारी, कलाबाजी, और अन्य करतबों के प्रदर्शन के लिए नियोजित किया जाता है ; [2][**]

[3][(ivक) कोई दुकान या स्थापन ; या]

(v) कोई ऐसा स्थापन जिसे इस अधिनियम के उपबंध धारा 2 की उपधारा (1) के अधीन लागू घोषित किए गए हैं ;]

(च) "कारखाना" से कारखाना अधिनियम, 1948 (1948 का 63) की धारा 2 के खंड (ड) में यथापरिभाषित कारखाना अभिप्रेत है ;

(छ) "निरीक्षक" से धारा 14 के अधीन नियुक्त निरीक्षक अभिप्रेत है ;

---

[1] 1973 के अधिनियम संख्यांक 52 की धारा 4 द्वारा (1.3.1975 से) खंड (ङ) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1988 के अधिनियम संख्यांक 61 की धारा 3 द्वारा (10.1.1989 से) "या" शब्द का लोप किया गया ।

[3] 1988 के अधिनियम संख्यांक 61 की धारा 3 द्वारा (10.1.1989 से) अंत:स्थापित ।

(ज) "प्रसूति प्रसुविधा" से धारा 5 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट संदाय अभिप्रेत है ;

[1][(जक) "गर्भ का चिकित्सीय समापन" से गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम, 1971 (1971 का 34) के उपबंधों के अधीन अनुज्ञेय गर्भ का समापन अभिप्रेत है ;]

(झ) "खान" से खान अधिनियम, 1952 (1952 का 35) की धारा 2 के खंड (ञ) में यथापरिभाषित खान अभिप्रेत है ;

(ञ) "गर्भपात" से गर्भावस्था के छब्बीसवें सप्ताह के पूर्व या दौरान की किसी कालावधि में सगर्भ गर्भाशय की अंतर्वस्तुओं का निष्कासन अभिप्रेत है, किन्तु इसके अंतर्गत ऐसा गर्भपात नहीं आता है जिसका कारित किया जाना भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन दंडनीय है ;

(ट) "बागान" से बागान श्रम अधिनियम, 1951 (1951 का 69) की धारा 2 के खंड (च) में यथापरिभाषित बागान अभिप्रेत है ;

(ठ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ड) "राज्य सरकार" से किसी संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में उसका प्रशासक अभिप्रेत है ;

(ढ) "मजदूरी" से वह सब पारिश्रमिक अभिप्रेत है जो किसी स्त्री को, नकदी में संदत्त किया गया या यदि नियोजन की संविदा के अभिव्यक्त या विवक्षित निबंधनों की पूर्ति हो गई होती तो संदेय होता और इसके अंतर्गत निम्नलिखित भी आते हैं –

(1) ऐसे नकद भत्ते (जिनके अंतर्गत मंहगाई भत्ता और गृह भाटक भत्ता भी है) जिनकी कोई स्त्री तत्समय हकदार हो ;

(2) प्रोत्साहन बोनस ; तथा

(3) खाद्यान्नों या अन्य वस्तुओं के रियायती प्रदाय का धन मूल्य,

किन्तु इसके अंतर्गत निम्नलिखित नहीं हैं –

---

[1] 1995 के अधिनियम सख्यांक 29 की धारा 2 द्वारा (1.2.1996 से) अंत:स्थापित ।

(i) प्रोत्साहन बोनस से भिन्न कोई बोनस ;

(ii) अतिकालिक उपार्जन और जुर्मानों के लिए की गई कोई कटौती या संदाय ;

(iii) किसी पेंशन निधि या भविष्य निधि में या उस स्त्री की प्रसुविधा के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन नियोजक द्वारा संदत्त या संदेय कोई अभिदाय ; तथा

(iv) सेवा के पर्यवसान पर संदेय कोई उपदान ;

(ण) "स्त्री" से किसी स्थापन में मजदूरी पर नियोजित स्त्री अभिप्रेत है चाहे वह सीधे नियोजित हो या किसी अभिकरण के माध्यम से ।

4. **कतिपय कालावधियों के दौरान स्त्रियों का नियोजन या उनके द्वारा काम का किया जाना प्रतिषिद्ध** – (1) कोई भी नियोजक किसी स्त्री को उसके प्रसव [1][गर्भपात या गर्भ के चिकित्सीय समापन] के दिन के अव्यवहित पश्चात्वर्ती छह सप्ताह के दौरान किसी स्थापन में जानते हुए नियोजित न करेगा ।

(2) कोई भी स्त्री अपने प्रसव [1][गर्भपात या गर्भ के चिकित्सीय समापन] के दिन के अव्यवहित पश्चात्वर्ती छह सप्ताह के दौरान किसी स्थापन में काम नहीं करेगी ।

(3) धारा 6 के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि किसी भी गर्भवती स्त्री से इस निमित्त उसके द्वारा प्रार्थना की जाने पर उपधारा (4) में विनिर्दिष्ट कालावधि के दौरान उसके नियोजक द्वारा कोई ऐसा काम करने की अपेक्षा नहीं की जाएगी जो कठिन प्रकृति का हो या जिसमें दीर्घकाल तक खड़ा रहना अपेक्षित हो या जिससे उसके गर्भवतित्व में या भ्रूण के प्रसामान्य विकास में किसी भी प्रकार विघ्न होना संभाव्य हो या जिससे उसका गर्भपात कारित होना या अन्यथा उसके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना संभाव्य हो ।

(4) उपधारा (3) में निर्दिष्ट कालावधि निम्नलिखित होगी –

(क) उसके प्रत्याशित प्रसव की तारीख के पूर्व के छह सप्ताह

---

[1] 1995 के अधिनियम संख्यांक 29 की धारा 3 द्वारा (1.2.1996 से) कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

की कालावधि के अव्यवहित पूर्ववर्ती एक मास की कालावधि ;

(ख) उक्त छह सप्ताह की कालावधि के दौरान की कोई कालावधि जिसके लिए वह गर्भवती स्त्री अनुपस्थिति की छुट्टी का उपभोग धारा 6 के अधीन नहीं करती ।

5. **प्रसूति प्रसुविधा के संदाय के लिए अधिकार** – [1][(1) इस अधिनियम के उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए, हर स्त्री अपनी वास्तविक अनुपस्थिति की कालावधि, अर्थात् अपने प्रसव के दिन के अव्यवहित पूर्ववर्ती कालावधि, अपने प्रसव के वास्तविक दिन और उस दिन की अव्यवहित पश्चात्वर्ती किसी कालावधि के लिए औसत दैनिक मजदूरी की दर पर प्रसूति प्रसुविधा के संदाय की हकदार होगी और उसका नियोजक उसके लिए दायी होगा ।]

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजन के लिए औसत दैनिक मजदूरी से उस तारीख के, जिससे वह स्त्री प्रसूति के कारण अनुपस्थित होती है, अव्यवहित पूर्ववर्ती तीन कलैंडर मासों की कालावधि के दौरान के उन दिनों के लिए जिन दिनों उसने काम किया है उसको संदेय उसकी मजदूरी का औसत [2][मजदूरी संदाय अधिनियम, 1948 (1948 का 11) के अधीन नियत या पुनरीक्षित मजदूरी की न्यूनतम दर या दस रुपए प्रतिदिन, जो भी अधिक हो] ।

(2) कोई भी स्त्री प्रसूति प्रसुविधा की तब तक हकदार न होगी, जब तक उसने अपने प्रत्याशित प्रसव की तारीख के अव्यवहित पूर्ववर्ती बारह मासों में [2][अस्सी दिन] से अन्यून दिन की कालावधि पर्यंत उस नियोजक के जिससे प्रसुविधा का वह दावा करती है किसी स्थापन में वस्तुतः काम न किया हो :

परंतु पूर्वोक्त [2][अस्सी दिन] की अर्हक कालावधि उस स्त्री को लागू न होगी जिसने असम राज्य में अप्रवास किया हो और अप्रवास के समय गर्भवती रही हो ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के अधीन उन दिनों की जिन दिनों स्त्री

---

[1] 1988 के अधिनियम संख्यांक 61 की धारा 4 द्वारा (10.1.1989 से) उपधारा (1) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1988 के अधिनियम संख्यांक 61 की धारा 4 द्वारा (10.1.1989 से) कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

ने स्थापन में वस्तुतः काम किया संगणना करने के प्रयोजनार्थ, उन दिनों को गणना में लिया जाएगा जिन दिनों उसके प्रत्याशित प्रसव की तारीख के अव्यवहित पूर्ववर्ती बारह मास की कालावधि के दौरान [1][उसकी कामबंदी की गई हो या वह ऐसे अवकाश पर हो जिसे तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन मजदूरी सहित अवकाश घोषित किया गया हो] ।

[1][(3) वह अधिकतम कालावधि, जिसके लिए कोई स्त्री प्रसूति प्रसुविधा की हकदार होगी, बारह सप्ताह होगी, जिसमें से छह सप्ताह से अनधिक उसके प्रसव की प्रत्याशित तारीख से पूर्व होंगी :]

परंतु जहां कि कोई स्त्री इस कालावधि के दौरान मर जाए, वहां प्रसूति प्रसुविधा उसकी मृत्यु के दिन तक के लिए ही, जिसके अंतर्गत वह दिन भी सम्मिलित होगा, संदेय होगी :

[1][परंतु यह और भी कि जहां कोई स्त्री शिशु को जन्म देकर अपने प्रसव के दौरान या अपने प्रसव की तारीख के अव्यवहित पश्चात्वर्ती उस कालावधि के दौरान, जिसके लिए वह प्रसूति प्रसुविधा के लिए हकदार है, इन दोनों दशाओं में से किसी भी दशा में उस शिशु को छोड़कर मर जाती है, वहां नियोजक उस संपूर्ण कालावधि के लिए, यदि शिशु भी उक्त कालावधि के दौरान मर जाए तो शिशु की मृत्यु के दिन तक की, जिसमें वह दिन भी सम्मिलित होगा, कालावधि के लिए, प्रसूति प्रसुविधा का दायी होगा ।]

[2][**5क. कुछ दशाओं में प्रसूति प्रसुविधा का बना रहना** – इस अधिनियम के अधीन प्रसूति प्रसुविधा पाने की हकदार हर स्त्री, उस कारखाने या अन्य स्थापन को जिसमें वह नियोजित है, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (1948 का 34) के लागू होते हुए भी, तब तक पूर्ववत् हकदार बनी रहेगी जब तक वह उस अधिनियम की धारा 50 के अधीन प्रसूति प्रसुविधा का दावा करने के लिए अर्हित न हो जाए ।]

[3][**5ख. कतिपय दशाओं में प्रसूति प्रसुविधा का संदाय** – प्रत्येक स्त्री –

(क) जो किसी ऐसे कारखाने अथवा अन्य स्थापन में नियोजित

---

[1] 1988 के अधिनियम संख्यांक 61 की धारा 4 द्वारा (10.1.1989 से) कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1972 के अधिनियम संख्यांक 21 की धारा 3 द्वारा (1.6.1972 से) अंत:स्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम संख्यांक 53 की धारा 3 द्वारा (1.5.1976 से) अंत:स्थापित ।

है जिसे कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (1948 का 34) के उपबंध लागू होते हैं ;

(ख) जिसकी मजदूरी (अतिकाल काम के लिए पारिश्रमिक को छोड़कर) एक मास के लिए उस अधिनियम की धारा 2 के खंड (ख) के उपखंड में विनिर्दिष्ट रकम से अधिक है ; और

(ग) जो धारा 5 की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट शर्तों की पूर्ति करती है,

इस अधिनियम के अधीन प्रसूति प्रसुविधा के संदाय की हकदार होगी ।]

6. **प्रसूति प्रसुविधा के दावे की सूचना और उसका संदाय** – (1) किसी स्थापन में नियोजित और इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन प्रसूति प्रसुविधा की हकदार स्त्री अपने नियोजक को ऐसे प्ररूप में जो विहित किया जाए, यह कथन करते हुए लिखित सूचना दे सकेगी कि उसकी प्रसूति प्रसुविधा और कोई अन्य रकम, जिसकी वह इस अधिनियम के अधीन हकदार हो, उसे या उस व्यक्ति को, जिसे वह सूचना में नामनिर्देशित करे संदत्त की जाए और यह कि वह उस कालावधि के दौरान जिसके लिए वह प्रसूति प्रसुविधा प्राप्त करती है किसी स्थापन में कार्य नहीं करेगी ।

(2) ऐसी स्त्री की दशा में जो गर्भवती है ऐसी सूचना में वह तारीख कथित होगी जिससे वह काम से अनुपस्थित रहेगी और वह तारीख उसके प्रत्याशित प्रसव की तारीख से छह सप्ताह के पूर्वतर की नहीं होगी ;

(3) कोई स्त्री जिसने तब सूचना न दी हो जब वह गर्भवती थी प्रसव के पश्चात् यथासंभव शीघ्र ऐसी सूचना दे सकेगी ।

[1][(4) उस सूचना की प्राप्ति पर नियोजक उस स्त्री को यह अनुज्ञा देगा कि वह उस कालावधि के दौरान, जिसके लिए वह प्रसूति प्रसुविधा प्राप्त करती है स्थापन से अनुपस्थित रहे ।]

(5) किसी स्त्री के प्रत्याशित प्रसव की तारीख की पूर्ववर्ती कालावधि के लिए प्रसूति प्रसुविधा की रकम, इस बात के कि वह स्त्री गर्भवती है ऐसे सबूत के जैसा विहित किया जाए, पेश किए जाने पर, उस स्त्री को नियोजक द्वारा अग्रिम दी जाएगी, और पश्चात्वर्ती कालावधि के लिए देय

---

[1] 1988 के अधिनियम संख्यांक 61 की धारा 5 द्वारा (10.1.1989 से) उपधारा (4) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

रकम, इस बात के कि उस स्त्री ने शिशु का प्रसव किया है ऐसे सबूत के जैसा विहित किया जाए, पेश किए जाने के अड़तालीस घंटों के अंदर उस स्त्री को नियोजक द्वारा संदत्त की जाएगी ।

(6) इस धारा के अधीन सूचना न दे पाना किसी स्त्री को इस अधिनियम के अधीन प्रसूति प्रसुविधा या किसी अन्य रकम के हक से वंचित न करेगा यदि वह ऐसी प्रसुविधा या रकम के लिए अन्यथा हकदार हो और ऐसे किसी मामले में निरीक्षक या तो स्वप्रेरणा से या उसको उस स्त्री द्वारा आवेदन किए जाने पर ऐसी प्रसुविधा या रकम का संदाय ऐसी कालावधि के अंदर करने का आदेश दे सकता जो उस आदेश में विनिर्दिष्ट हो ।

7. **किसी स्त्री की मृत्यु की दशा में प्रसूति प्रसुविधा का संदाय** – यदि इस अधिनियम के अधीन प्रसूति प्रसुविधा या किसी अन्य रकम की हकदार कोई स्त्री ऐसी प्रसूति प्रसुविधा या रकम को प्राप्त करने से पूर्व मर जाए तो, या जहां नियोजक धारा 5 की उपधारा (3) के द्वितीय परंतुक के अधीन प्रसूति प्रसुविधा का दायी हो वहां नियोजक ऐसी प्रसुविधा या रकम धारा 6 के अधीन दी गई सूचना में स्त्री द्वारा नामनिर्देशित व्यक्ति को, और उस दशा में जबकि कोई ऐसा नामनिर्देशिती न हो उसके विधिक प्रतिनिधि को, संदत्त करेगा ।

[1][8. **चिकित्सीय बोनस का संदाय** – (1) यदि नियोजक द्वारा प्रसवपूर्व रखने और प्रसवोत्तर देखरेख की कोई भी व्यवस्था निःशुल्क प्रदान की गई हो तो इस अधिनियम के अधीन प्रसूति प्रसुविधा की हकदार हर स्त्री अपने नियोजक से एक हजार रुपए का चिकित्सीय बोनस भी पाने की हकदार होगी ।

(2) केन्द्रीय सरकार प्रत्येक तीन वर्ष के पूर्व, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, चिकित्सीय बोनस की रकम को, बीस हजार रुपए की अधिकतम सीमा के अधीन रहते हुए, बढ़ा सकेगी ।]

[2][9. **गर्भपात, आदि की दशा में छुट्टी** – गर्भपात या गर्भ के चिकित्सीय समापन की दशा में, कोई स्त्री, ऐसा सबूत पेश करने पर, जैसा विहित किया जाए, यथास्थिति, अपने गर्भपात या अपने गर्भ के चिकित्सीय

---

[1] 2008 के अधिनियम संख्यांक 15 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 1995 के अधिनियम संख्यांक 29 की धारा 4 द्वारा (1.2.1996 से) धारा 9 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

समापन के दिन के अव्यवहित पश्चात्वर्ती छह सप्ताह की कालावधि के लिए प्रसूति प्रसुविधा की दर पर मजदूरी सहित छुट्टी की हकदार होगी ।]

[1][**9क. ट्यूबेक्टोमी शल्य-क्रिया के लिए मजदूरी सहित छुट्टी** – ट्यूबेक्टोमी शल्य-क्रिया की दशा में, कोई स्त्री, ऐसा सबूत पेश करने पर, जैसा विहित किया जाए, अपनी ट्यूबेक्टोमी शल्य-क्रिया के दिन के अव्यवहित पश्चात्वर्ती दो सप्ताह की कालावधि के लिए प्रसूति प्रसुविधा की दर पर मजदूरी सहित छुट्टी की हकदार होगी ।]

10. **गर्भावस्था, प्रसव, समयपूर्व शिशु जन्म, या गर्भपात से पैदा होने वाली रुग्णता के लिए छुट्टी** – गर्भावस्था, प्रसव, समयपूर्व शिशु जन्म, [2][गर्भपात, गर्भ के चिकित्सीय समापन या ट्यूबेक्टोमी शल्य-क्रिया] से पैदा होने वाली रुग्णता से पीड़ित स्त्री, ऐसा सबूत पेश करने पर, जैसा विहित किया जाए, यथास्थिति, धारा 6 या धारा 9 के अधीन उसे अनुज्ञात अनुपस्थिति कालावधि के अतिरिक्त, प्रसूति प्रसुविधा की दर पर मजदूरी सहित अधिकतम एक मास की कालावधि की छुट्टी की हकदार होगी ।

11. **पोषणार्थ विराम** – हर प्रसूता स्त्री को जो प्रसव के पश्चात् काम पर वापस आती है उसे विश्रामार्थ अंतराल के अतिरिक्त जो उसे अनुज्ञात है अपने दैनिक काम की चर्या में विहित कालावधि के दो विराम शिशु के पोषण के लिए तब तक अनुज्ञात होंगे, जब तक वह शिशु पंद्रह मास की आयु पूरी न कर ले ।

12. **गर्भावस्था के कारण अनुपस्थिति के दौरान पदच्युति** – (1) जब कोई स्त्री काम पर से इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार अनुपस्थित रहती है तब उसके नियोजक के लिए यह विधिविरुद्ध होगा कि वह उसे ऐसी अनुपस्थिति के दौरान या कारण उन्मोचित या पदच्युत करे या उसे उन्मोचन या पदच्युति की सूचना ऐसे दिन दे कि वह सूचना ऐसी अनुपस्थिति के दौरान अवसित हो, या उसकी सेवा की शर्तों में से किसी में उसके लिए अहितकर फेरफार करे ।

(2)(क) किसी स्त्री का, उसकी गर्भावस्था के दौरान किसी समय उन्मोचन या पदच्युति का प्रभाव उसे प्रसुविधा या चिकित्सीय बोनस से वंचित करना न होगा, यदि वह स्त्री ऐसे उन्मोचन या पदच्युति के अभाव

---

[1] 1995 के अधिनियम संख्यांक 29 की धारा 5 द्वारा (1.2.1996 से) अंत:स्थापित ।

[2] 1995 के अधिनियम संख्यांक 29 की धारा 6 द्वारा (1.2.1996 से) प्रतिस्थापित ।

में, धारा 8 में निर्दिष्ट प्रसूति प्रसुविधा या चिकित्सीय बोनस की हकदार होती :

परंतु जहां कि पदच्युति किसी विहित घोर अवचार के कारण हो वहां नियोजक स्त्री को संसूचित लिखित आदेश द्वारा उसे प्रसूति प्रसुविधा या चिकित्सीय बोनस या दोनों से वंचित कर सकेगा ।

[1][(ख) प्रसूति प्रसुविधा, या चिकित्सीय बोनस, या दोनों से, वंचित या इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार काम से अपनी अनुपस्थिति के दौरान या उसके कारण सेवोन्मुक्त या पदच्युत स्त्री, उस तारीख से, साठ दिन के भीतर जिसको ऐसे वंचित या सेवोन्मुक्त या पदच्युत किए जाने का आदेश उसे संसूचित किया गया हो, ऐसे प्राधिकारी को, जो विहित किया जाए, अपील कर सकेगी और ऐसी अपील पर उस प्राधिकारी का यह विनिश्चय अंतिम होगा कि स्त्री को प्रसूति प्रसुविधा या चिकित्सीय बोनस, या दोनों से, वंचित या सेवोन्मुक्त या पदच्युत किया जाना चाहिए या नहीं ।]

(ग) इस उपधारा में अंतर्विष्ट कोई भी बात उपधारा (1) में अंतर्विष्ट उपबंधों पर प्रभाव न डालेगी ।

13. **कतिपय मामलों में मजदूरी में से कटौती का न किया जाना** – इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन प्रसूति प्रसुविधा की हकदार स्त्री की प्रसामान्य और प्रायिक दैनिक मजदूरी में से केवल –

(क) धारा 4 की उपधारा (3) में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के आधार पर उसे समनुदिष्ट काम की प्रकृति; अथवा

(ख) धारा 11 के उपबंधों के अधीन उसे शिशु के पोषण के लिए अनुज्ञात विरामों, के ही कारण कोई भी कटौती नहीं की जाएगी ।

14. **निरीक्षकों की नियुक्ति** – समुचित सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा ऐसे आफिसरों को, जिन्हें वह ठीक समझे, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए निरीक्षक नियुक्त कर सकेगी और अधिकारिता की वे स्थानीय सीमाएं परिनिश्चित कर सकेगी जिनके अन्दर वे इस अधिनियम के अधीन के अपने कृत्यों का प्रयोग करेंगे ।

15. **निरीक्षकों की शक्ति और कर्तव्य** – निरीक्षक, ऐसे निर्बन्धनों या शर्तों के अध्यधीन रहते हुए, जो विहित की जाएं, निम्नलिखित सब

---

[1] 1988 के अधिनियम सख्यांक 61 की धारा 7 द्वारा (10.1.1989 से) प्रतिस्थापित ।

शक्तियों का या उनमें से किसी का भी प्रयोग कर सकेगा, अर्थात् :–

(क) ऐसे सहायकों के साथ, यदि कोई हों, जो सरकार की या किसी स्थानीय या अन्य लोक प्राधिकारी की सेवा में के व्यक्ति हों, और जिन्हें वह ठीक समझे, किसी भी ऐसे परिसर या स्थानों में जहां स्थापन में स्त्रियों को नियोजित किया जाता है, या काम दिया जाता है, किन्हीं ऐसे रजिस्टरों, अभिलेखों और सूचनाओं की जो इस अधिनियम के द्वारा या अधीन रखे या प्रदर्शित किए जाने के लिए अपेक्षित हैं, परीक्षा करने के प्रयोजन के लिए सभी युक्तियुक्त समयों पर प्रवेश करना और उन्हें निरीक्षण के लिए पेश करने की अपेक्षा करना ;

(ख) किसी ऐसे व्यक्ति की परीक्षा करना, जिसे वह किसी ऐसे परिसर या स्थान में पाए और जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का युक्तियुक्त हेतुक हो कि वह उस स्थापन में नियोजित है :

परन्तु किसी भी व्यक्ति को इस धारा के अधीन ऐसे प्रश्न का उत्तर देने के लिए या ऐसा साक्ष्य देने के लिए विवश नहीं किया जाएगा, जिसकी प्रवृत्ति स्वयं उसे अपराध में फंसाने की हो ;

(ग) नियोजक से यह अपेक्षा करना कि वह नियोजित स्त्रियों के नामों और पतों, उन्हें किए गए संदायों और इस अधिनियम के अधीन उनसे प्राप्त आवेदनों या सूचनाओं के बारे में जानकारी दे ; तथा

(घ) किन्हीं रजिस्टरों और अभिलेखों या सूचनाओं या उनके किन्हीं प्रभागों की प्रतिलिपियां लेना ।

16. **निरीक्षकों का लोक सेवक होना** – इस अधिनियम के अधीन नियुक्त किया गया हर निरीक्षक भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ के अन्दर लोक सेवक समझा जाएगा ।

17. **संदाय किए जाने का निदेश देने की निरीक्षक की शक्ति** – [1][(1) इस बात का दावा करने वाली कोई भी स्त्री कि –

(क) प्रसूति प्रसुविधा या कोई अन्य रकम, जिसकी वह इस अधिनियम के अधीन हकदार है, अनुचित रूप से विधारित की गई है,

---

[1] 1988 के अधिनियम संख्यांक 61 की धारा 8 द्वारा (10.1.1989 से) उपधारा (1) और उपधारा (2) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

और इस बात का दावा करने वाला कोई भी व्यक्ति कि वह संदाय, जो धारा 7 के अधीन शोध्य है, अनुचित रूप से विधारित किया गया है ;

(ख) उसके नियोजक ने इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार, काम से उसकी अनुपस्थिति के दौरान या उसके कारण, उसको सेवोन्मुक्त या पदच्युत कर दिया है,

निरीक्षक को परिवाद कर सकेगी ।

(2) निरीक्षक, स्वप्रेरणा से या उपधारा (1) में निर्दिष्ट परिवाद की प्राप्ति पर, जांच कर सकेगा या करा सकेगा और यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि –

(क) संदाय सदोषतः विधारित किया गया है, तो वह अपने आदेशों के अनुसार संदाय किए जाने का निदेश दे सकेगा ;

(ख) स्त्री को इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार, काम से उसकी अनुपस्थिति के दौरान या उसके कारण सेवोन्मुक्त या पद-च्युत किया गया है, तो वह ऐसे आदेश पारित कर सकेगा, जो मामले की परिस्थितियों के अनुसार न्यायसंगत और उचित हों ।]

(3) निरीक्षक के उपधारा (2) के अधीन के विनिश्चय से व्यथित कोई भी व्यक्ति, उस तारीख से, जिसको ऐसा विनिश्चय ऐसे व्यक्ति को संसूचित किया जाए, तीस दिन के भीतर अपील विहित प्राधिकारी को कर सकेगा ।

(4) जहां उपधारा (3) के अधीन कोई अपील विहित प्राधिकारी को की गई हो, वहां उसका, और जहां ऐसी अपील न की गई हो, वहां निरीक्षक का विनिश्चय अंतिम होगा ।

[1][(5) इस धारा के अधीन संदाय रकम कलक्टर द्वारा, निरीक्षक द्वारा उस रकम के लिए जारी किए गए प्रमाणपत्र पर, भू-राजस्व की बकाया की भांति वसूलीय होगी ।]

18. **प्रसूति प्रसुविधा का समपहरण** – यदि कोई स्त्री, अपने नियोजक द्वारा धारा 6 के उपबन्धों के अधीन अनुपस्थित रहने के लिए

---

[1] 1988 के अधिनियम संख्यांक 61 की धारा 8 द्वारा (10.1.1989 से) उपधारा (5) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

अनुज्ञात किए जाने के पश्चात् ऐसी प्राधिकृत अनुपस्थिति के दौरान किसी कालावधि में किसी स्थापन में काम करेगी, तो ऐसी कालावधि के लिए प्रसूति प्रसुविधा का उसका दावा समपहृत हो जाएगा ।

19. **अधिनियम और तद्धीन नियमों की संक्षिप्ति का प्रदर्शित किया जाना** – इस अधिनियम और तद्धीन बनाए गए नियमों के उपबन्धों की उस परिक्षेत्र की भाषा या भाषाओं में संक्षिप्ति स्थापन के हर ऐसे भाग में, जिसमें स्त्रियां नियोजित हों, किसी सहजदृश्य स्थान में नियोजक द्वारा प्रदर्शित की जाएगी ।

20. **रजिस्टर, आदि** – हर नियोजक ऐसे रजिस्टर, अभिलेख और मस्टर रोल, जैसे और ऐसी रीति में, जैसी विहित की जाए, तैयार करेगा और रखेगा ।

[1][21. **नियोजक द्वारा अधिनियम के उल्लंघन के लिए शास्ति** – (1) यदि कोई नियोजक, इस अधिनियम के अधीन हकदार किसी स्त्री की प्रसूति प्रसुविधा की किसी रकम का संदाय करने में असफल रहेगा या इस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार काम से अनुपस्थित रहने के दौरान या उसके कारण ऐसी स्त्री को सेवोन्मुक्त या पदच्युत करेगा, तो वह कारावास से, जो तीन मास से कम का नहीं होगा किंतु जो एक वर्ष तक का हो सकेगा और जुर्माने से, जो दो हजार रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो पांच हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा :

परंतु न्यायालय, पर्याप्त कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे, और कम अवधि के कारावास का या कारावास के बजाय जुर्माने का दंडादेश, अधिरोपित कर सकेगा ।

(2) यदि कोई नियोजक इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबन्धों का उल्लंघन करेगा तो वह, यदि ऐसे उल्लंघन के लिए इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन अन्यत्र कोई अन्य शास्ति उपबंधित नहीं की गई है, ऐसे कारावास से, जो एक वर्ष तक का हो सकेगा, या जुर्माने से, जो पांच हजार रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, दण्डनीय होगा :

परंतु जहां उल्लंघन प्रसूति प्रसुविधा के बारे में या किसी अन्य रकम के

---

[1] 1988 का अधिनियम संख्यांक 61 की धारा 9 द्वारा (10.1.1989 से) धारा 21 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

संदाय के बारे में किसी उपबंध का हो और ऐसी प्रसूति प्रसुविधा या रकम पहले ही वसूल नहीं कर ली गई हो वहां, न्यायालय, उसके अतिरिक्त, ऐसी प्रसूति प्रसुविधा या रकम ऐसे वसूल करेगा, मानो वह जुर्माना हो और उसे उसके हकदार व्यक्ति को संदत्त करेगा ।]

22. **निरीक्षक को बाधा पहुंचाने के लिए शास्ति** – जो कोई इस अधिनियम या तद्धीन बनाए गए नियमों के अनुसरण में रखे गए अपनी अभिरक्षा में के किसी रजिस्टर या दस्तावेज को निरीक्षक द्वारा मांगे जाने पर पेश करने में असफल रहेगा या किसी व्यक्ति को, निरीक्षक के समक्ष उपसंजात होने से या उसके द्वारा परीक्षित किए जाने से, निवारित करेगा, या उसे छिपाएगा, वह कारावास से, [1][जो एक वर्ष तक का हो सकेगा, या जुर्माने से, जो पांच हजार रुपए तक का हो सकेगा,] या दोनों से, दण्डनीय होगा ।

[2][23. **अपराधों का संज्ञान** – (1) कोई व्यथित स्त्री, व्यवसाय संघ अधिनियम, 1926 (1926 का 16) के अधीन रजिस्ट्रीकृत किसी ऐसे व्यवसाय संघ का, जिसकी ऐसी स्त्री सदस्य है, कोई पदाधिकारी या सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) के अधीन रजिस्ट्रीकृत कोई स्वैच्छिक संगठन या कोई निरीक्षक इस अधिनियम के अधीन अपराध के किए जाने की बाबत सक्षम अधिकारिता वाले किसी न्यायालय में परिवाद फाइल कर सकेगा और ऐसा कोई परिवाद उस तारीख से, जिसको अपराध का किया जाना अभिकथित है, एक वर्ष की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) महानगर मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट के न्यायालय से अवर कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का विचारण नहीं करेगा ।]

24. **सद्भावपूर्वक किए गए कार्य के लिए परित्राण** – किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही किसी ऐसी बात के लिए नहीं होगी, जो इस अधिनियम या तद्धीन बनाए गए किसी नियम या किए गए आदेश के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई

---

[1] 1988 के अधिनियम संख्यांक 61 की धारा 10 द्वारा (10.1.1989 से) कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1988 के अधिनियम संख्यांक 61 की धारा 11 द्वारा (10.1.1989 से) धारा 23 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

या की जाने के लिए आशयित हो ।

25. **केन्द्रीय सरकार की निदेश देने की शक्ति** – केन्द्रीय सरकार राज्य सरकार को इस अधिनियम के उपबंधों का निष्पादन करने के संबंध में ऐसे निदेश दे सकेगी जो वह आवश्यक समझे और राज्य सरकार ऐसे निदेशों का पालन करेगी ।

26. **स्थापनों को छूट देने की शक्ति** – यदि समुचित सरकार का समाधान हो जाए कि ऐसी प्रसुविधाओं के, जो इस अधिनियम में उपबन्धित प्रसुविधाओं से कम अनुकूल न हों, अनुदान का उपबन्ध करने वाले किसी स्थापन को या स्थापनों के वर्गों को ध्यान में रखते हुए ऐसा करना आवश्यक है तो वह शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा उस स्थापन को या स्थापनों के वर्ग को इस अधिनियम के या तद्धीन बनाए गए किसी नियम के सभी या किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन से ऐसी शर्तों और निर्बंधनों के, यदि कोई हों, अध्यधीन, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं, छूट दे सकेगी ।

27. **इस अधिनियम से असंगत विधियों और करारों का प्रभाव** – (1) इस अधिनियम के उपबन्ध उनसे असंगत किसी बात के किसी अन्य विधि में या किसी अधिनिर्णय, करार या सेवा-संविदा के निबन्धनों में, चाहे वह इस अधिनियम के प्रवर्तन में आने के पूर्व चाहे पश्चात् बनाई गई, किया गया या की गई हो, अन्तर्विष्ट होते हुए भी प्रभावी होंगे :

परंतु जहां किसी ऐसे अधिनिर्णय, करार, सेवा-संविदा के अधीन या अन्यथा कोई स्त्री किसी बात के बारे में ऐसी प्रसुविधाओं की हकदार हो, जो उसके लिए उन प्रसुविधाओं से अधिक अनुकूल हों जिनकी वह इस अधिनियम के अधीन हकदार होती, वहां वह स्त्री उस बात के बारे में अधिक अनुकूल प्रसुविधाओं की हकदार इस बात के होते हुए भी बनी रहेगी कि वह स्त्री अन्य बातों के बारे में, इस अधिनियम के अधीन प्रसुविधाएं प्राप्त करने की हकदार है ।

(2) इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी बात का ऐसा अर्थ नहीं लगाया जाएगा, जो किसी स्त्री को इस बात से प्रवारित करे कि वह अपने नियोजक से ऐसे अधिकारों और विशेषाधिकारों के अनुदान के लिए करार करे जो उसे उनसे अधिक अनुकूल हों, जिनकी वह इस अधिनियम के अधीन हकदार होती ।

28. **नियम बनाने की शक्ति** – (1) समुचित सरकार पूर्व प्रकाशन की

शर्त के अध्यधीन रहते हुए और इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतः और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित के लिए उपबन्ध कर सकेंगे –

(क) रजिस्टरों, अभिलेखों और मस्टर रोलों को तैयार करना और बनाए रखना ;

(ख) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए निरीक्षकों द्वारा शक्तियों का (जिनके अन्तर्गत स्थापनों का निरीक्षण आता है) प्रयोग और कर्तव्यों का पालन ;

(ग) प्रसूति प्रसुविधा और इस अधिनियम के अधीन की अन्य प्रसुविधाओं के संदाय का ढंग, वहां तक जहां तक उसके लिए इस अधिनियम में उपबंध किया गया है ;

(घ) धारा 6 के अधीन की सूचनाओं का प्ररूप ;

(ङ) इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन अपेक्षित सबूत की प्रकृति ;

(च) धारा 11 में विनिर्दिष्ट पोषणार्थ विरामों की कालावधि ;

(छ) वे कार्य, जो धारा 12 के प्रयोजनों के लिए घोर अवचार गठित करें ;

(ज) वह प्राधिकारी, जिसको धारा 12 की उपधारा (2) के खण्ड (ख) के अधीन अपील होगी ; वह प्ररूप और रीति, जिसमें ऐसी अपील की जा सकेगी और वह प्रक्रिया जिसका अनुसरण उसे निपटाने में किया जाना है ;

(झ) वह प्राधिकारी, जिसको धारा 17 के अधीन निरीक्षक के विनिश्चय के विरुद्ध अपील होगी ; वह प्ररूप और रीति जिसमें ऐसी अपील की जा सकेगी और वह प्रक्रिया जिसका अनुसरण उसे निपटाने में किया जाना है ;

(ञ) वह प्ररूप और रीति, जिसमें धारा 17 की उपधारा (1) के अधीन निरीक्षक से परिवाद किए जा सकेंगे और वह प्रक्रिया, जिसका अनुसरण उस धारा की उपधारा (2) के अधीन जांच करने या कराने में उनके द्वारा किया जाना है ;

(ट) कोई अन्य बात, जो विहित की जानी है या की जाए ।

[1][(3) इस धारा के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए, तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।]

29. **1951 के अधिनियम 69 का संशोधन** – बागान श्रम अधिनियम, 1951 की धारा 32 में, –

(क) उपधारा (1) में, शब्द "अर्हित चिकित्सा-व्यवसायी" के पूर्व कोष्ठक और अक्षर "(क)", शब्द "रूग्णता भत्ता", के पश्चात् के शब्द "तथा", और खण्ड (ख) लुप्त कर दिए जाएंगे ;

(ख) उपधारा (2) में शब्द "या प्रसूति" लुप्त कर दिए जाएंगे ।

30. **निरसन** – इस अधिनियम के –

(i) खानों को लागू होने पर, दि माइन्स मेटर्निटी बेनिफिट ऐक्ट, 1941 (1941 का 19) ; तथा

(ii) दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र में स्थित कारखानों को लागू होने पर बाम्बे मेटर्निटी बेनिफिट ऐक्ट, 1929 (1929 का मुम्बई अधिनियम सं. 7) जैसा वह उस राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त है, निरसित हो जाएगा ।

---

[1] 1973 के अधिनियम संख्यांक 52 की धारा 5 द्वारा (1.3.1975 से) प्रतिस्थापित ।